क
५६/१३

श्रीकृष्ण-सन्देश

वर्ष : ६

अंक : १३

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

वार्षिक मूल्य : ८ रु०

निगमामृत

[ऋग्वेद : म० १० सूक्त १८६ मन्त्र १]

ॐ वात आ वातु भेषजं
शंभु मयोभु नो हृदे ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ।।

हे वायुदेव ! आओ लेकर वह सुखकर औषधि सारी ।
जो हो सदा हमारे हितमें पथ्य अनवरत हितकारी ।।
आधि-व्याधि इस तनकी, मनकी जिससे त्वरित शमन हों ।
मिले सदा सुख आयु बढ़े ओ, अविनाशी मधु जीवन हो ।।

'बाबाजी'

क्र ५६८७३

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य
एवं संस्कृति-प्रधान
मासिक पत्र

पुस्तकालय

प्रवर्तक
पुण्यश्लोक जुगलकिशोर बिरला

वर्ष : ९ अङ्क : १२
अगस्त, १९७४
श्रीकृष्ण-संवत् ५१९८

वार्षिक : ७ रु०
वार्षिक ८ रु
आजीवन : १५१ रु०

प्रबन्ध-सम्पादक
देवधर शर्मा

सम्पादक-मण्डल
आचार्य सीताराम चतुर्वेदी
पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री
गोविन्द नरहरि वैजापुरकर
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

प्रकाशक
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा
दूरभाष : ३३८

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के उद्देश्य तथा नियम

•

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिक्य, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोध जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

• नियम : उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छांट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयोंपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक पृष्ठपर बायें हाशिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख 'सम्पादक' 'श्रीकृष्ण-सन्देश' के० ३०/४० घासीटोला वाराणसीके पतेपर भेजें।

• 'श्रीकृष्ण-सन्देश' भविष्यमें जनवरी माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होगा, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एकबार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चन्देमें उनके जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा। विशेष सूचना पृ० ४ पर पढ़ें।

ग्राहकको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनिआर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

• विज्ञापन : इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता।
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

अनुक्रम

निबन्ध	पृष्ठसंख्या	लेखक
राजविद्या राजगुह्य योग	७	... ...
उद्बोधन	९	श्री गोकुलानन्द तैलङ्ग
कृष्णने मिट्टी क्यों खायी ?	१०	अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती
दुग्धपान	१२	श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र'
गीता : कर्मयोगीकी दृष्टिमें	१७	श्री गोविन्द नरहरि वैजापुरकर
भारत क्या है	२५	श्रीमती विमलादेवी शर्मा
विश्व धर्म-शास्त्रोंमें 'अहिंसा' का स्थान	२८	श्री जयदयाल जी डालमिया
वही श्याम वही श्यामा : वही काला वही काली	३२	श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट
वियोगनीकी कजरी	३६	श्री अमरनाथ शुक्ल
रूपकमयी 'अभिलाषा'	३७	श्री भारतभूषण लाठ
देवकी : राजनन्दिनीसे राजबन्दिनी क्यों और कैसे	३८	श्री डॉ० कृष्ण मांगलीय
धर्म-संस्थापनार्थाय	४५	श्री गोविन्द शास्त्री
कुछ अनुकरणीय पुण्य संस्मरण	४९	श्री शिवनाथ सिंह 'शाण्डिल्य'
राजस्थानके सन्त बलदेव	५२	श्री मुरलीधर बंका
श्रीकृष्ण-भावना ही सर्वोत्तम योग	५६	श्री रविन्द्र प्रताप राय
परा-पूजा	५९	श्री शिवकुमार जी
भगवद् भजनसे आनन्दकी प्राप्ति	६०	श्री शारदाप्रसाद पाण्डेय
होगा समाप्त जब यह जीवन	६२	मंजुश्री वात्स्यायन

मासिक व्रत-पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०३१ अधिक भाद्रपद कृष्ण प्रतिपद् से शुद्ध भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा २ सितम्बर १९७४ से १ अक्टूबर १९७४ तक]

दिनाङ्क	वार	व्रत-पर्व
सितम्बर : १९७४ ई०		
५	गुरुवार	संकष्टी गणेश चतुर्थी-व्रत ।
८	रविवार	भानुसप्तमी ।
१२	गुरुवार	कमला एकादशी-व्रत, सबके लिए ।
१३	शुक्रवार	प्रदोष-व्रत ।
१४	शनिवार	मासशिवरात्रि-व्रत ।
१५	रविवार	दर्शश्राद्ध ।
१६	सोमवार	सोमवती अमावास्या ।
१७	मङ्गलवार	कन्यासंक्रान्ति ।
१८	बुधवार	हरितालिका व्रत, तीज ।
१९	गुरुवार	वैनायकी गणेश चतुर्थी-व्रत । गणेशोत्सवारम्भ ।
२०	शुक्रवार	ऋषिपञ्चमी ।
२७	शुक्रवार	पद्मा एकादशी व्रत । वामनद्वादशी ।
२८	शनिवार	शनि प्रदोष-व्रत ।
३०	सोमवार	अनन्त चतुर्दशी-व्रत । पूर्णिमा-व्रत ।
अक्टूबर : १९७४ ई०		
१	मङ्गलवार	महालया आरम्भ ।

रविवार १८ अगस्तसे सोमवार १६ सितम्बर तक अधिकमास (मलमास) ।

प्रत्यक्ष-दर्शियोंके भावभीने शब्द-सुमन

(अगस्त : सन् १९७४)

★

श्रीकृष्ण-जन्मभूमिके दर्शन प्राप्त करके अपार श्रद्धा और हर्ष हुआ।

प्रसन्नमल सिंघवी
अभिलाषा सिंघवी
डॉ० लक्ष्मीमल सिंघवी
एम० पी०

काफी अरसेके बाद एक बार पुनः यहाँ आनेका अवसर प्राप्त हुआ। इस बीच इस स्थानका कायाकल्प हो चुका है और बहुत-सी बातें प्रकाशमें आ चुकी हैं, जो अज्ञात थीं या मात्र कल्पनाके रूपमें थीं। अब यह सिद्ध हो चुका है कि भगवान् श्रीकृष्णका जन्मस्थान निश्चितरूपसे यही है। इस कार्यमें लगे हुए लोगोंको हार्दिक बधाई।

स्वायत्त मन्त्री
बिहार।

मैंने श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके दर्शन किये। हृदय आनन्द और श्रद्धासे भर गया। यहाँके अन्तर्राष्ट्रीय अतिथिगृहमें भी मैं ठहरा। यहाँका सुचारु प्रबन्ध देखकर प्रसन्नता हुई। यहाँके कर्मचारीगण भी अत्यन्त व्यवहार-कुशल तथा मिष्ठभाषी हैं।

सीताराम केजड़ीवाल
दरभंगा (बिहार)

मैं यहाँ जन्माष्टमीके अवसरपर आया। भगवान् कृष्णकी अनुपम झांकी देखकर मैं गद्गद हो गया। श्रीमती कृष्णादेवी डालमिया अतिथिगृहमें ठहरनेका भी सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। यहाँके सुन्दर प्रबन्धको देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ। मैनेजर महोदय तथा अन्य कर्मचारियोंके कुशल व्यवहारसे भी प्रसन्नता हुई। जनसेवाके हितमें किया जा रहा, यहाँका कार्य अतीव सराहनीय है।

बी० आर० अग्रवाल
सहायक केन्द्र निदेशक
आकाशवाणी, मथुरा

Visited this famous shrine of Lord Krishna and had darshan of the Lord.

D. Devaraj Urs
Chief Minister
Karnatak

Deeply impressed to have paid a visit to this holy shrine.

P. N. Chaudhri
Collector
Bharatpur, Rajasthan

Very happy to see all the developments in this shrine so holy to millions of our fellow-citizens. May the Good Lord lead all of us to love and serve Him daily better.

Dominic Athoide
O. F. M.
Archbishop of Agra.

Felt that Love of Lord is protected from the inch and inch of the foundation. Thy love should lead us to the prosperous life and towards perfection for ever we remember thou.

Major Desai V. M.
C/o Dattabal Mission
Divine, Kolhapur

I am very much pleased with all affairs and arrangements of this International Guest House.

Prabhakar Mukherji
27 Shree Gopal Mallick Road
Calcutta-57
(West Bengal)

We are very much impressed to visit the birth place of Lord Krishna and also staying at Shrimati KRISHNA DEVI DALMIA Guest House at Mathura and was highly satisfied with the service and accomodation. The staff was very courteous and useful.

Dipiti G. Sitwala
Block 12, Floor 3rd
Prakash Building No. 2
28 Ridge Road, Bombay-7

श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

वर्ष : ९] मथुरा : अगस्त, १९७४ [अङ्क : १२

राजविद्या राजगुह्य योग

श्रीभगवान् कहते हैं : अर्जुन, साक्षात् मोक्षका साधन, परम गोपनीय, अनुभवयुक्त वह ज्ञान दोषदृष्टिरहित तुझे बताऊँगा जिसे जानकर तू दुःखरूप संसारबन्धनसे मुक्त हो जायगा। यह ज्ञान सभी विद्याओंमें राजा यानी सर्वोत्कृष्ट दीप्तिमान् है, सभी गोपनीयोंमें श्रेष्ठ है, समस्त पवित्र वस्तुओंको पवित्र करनेवाला, अतएव उत्कृष्टतम है। यह प्रत्यक्ष बोधप्रद, धर्मयुक्त, साधनाके लिए सुगम और अविनाशी है। परन्तप ! आत्मज्ञानरूप इस धर्मके स्वरूप और उसके फलके विषयमें श्रद्धा न रखनेवाले पापी लोग मुझे कभी नहीं पाते और मृत्युयुक्त संसारमार्गमें पुनः लौटकर उन्हें कभी मोक्ष नहीं मिलता।

अर्जुन, मुझ अव्यक्तमूर्ति या करणोंसे अगोचर सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मासे यह समस्त ब्रह्मादि-स्तम्बपर्यन्त जगत् व्याप्त है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्पके आधारपर स्थित हैं। अतएव वास्तवमें मैं उनमें स्थित नहीं हूं। सब भूत मुझमें स्थित नहीं है, किन्तु मेरी योगमाया और आश्चर्यमय प्रभाव देख कि भूतोंका धारण-पोषण करनेवाला एवं उनका उत्पादक, मेरा आत्मा वास्तवमें भूतोंमें स्थित नहीं है। जैसे आकाशसे उत्पन्न और सर्वत्र विचरणशील महान् वायु सदैव आकाशमें ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्पसे उत्पन्न होनेके कारण सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित है, यह जान ले।

हे कौन्तेय! प्रलयकालमें कल्पके अन्तमें ये सब भूत मेरी त्रिगुणात्मिका अपरा प्रकृतिको प्राप्त होते हैं, अर्थात् प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं और कल्पके आदिमें पुनः मैं उन्हें पूर्ववत् रचता रहता हूँ। मैं अपनी प्रकृतिको हाथमें लेकर, अपने कर्मोंसे बँधे भूतोंके इस समग्र समुदायको पुनः पुनः निर्माण करता हूँ जो उस प्रकृतिके अधीन रहनेसे अवश यानी परतन्त्र हैं। यदि कहो कि तब तो इस विषम भूत-समुदायको उत्पन्न करनेवाले मेरा उस विषमताके कारण धर्माधर्मोंसे सम्बन्ध होता होगा, तो ऐसी बात नहीं। धनञ्जय! विषम सृष्टिके निमित्त वे कर्म मुझे कथमपि नहीं बाँध पाते। कारण, उस सृष्टि-निर्माणकार्यमें मेरी आसक्ति नहीं रहती। मैं उदासीन-सा रहता हूँ। इसी कारण वे कर्म मुझे बाँध नहीं पाते। भूत-समुदायको उत्पन्न करना और उदासीन भी रहना, यह कोई विरुद्ध बात नहीं। कारण, कौन्तेय! मैं अध्यक्ष या अधिष्ठाता बनकर प्रकृतिके द्वारा ही यह सारी चराचर सृष्टि उत्पन्न करवाता हूँ। इसीलिए जगत्का यह बनना-बिगड़ना, आवागमन चलता रहता है।

अविवेकी मूढ़ लोग मेरे वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते कि मैं सब भूतोंमें महान् ईश्वर हूँ और मुझे मानवशरीरधारी समझकर मेरी अवहेलना किया करते हैं। अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारार्थ मनुष्यरूपमें विचरते मुझे साधारण मनुष्य समझ लेते हैं। उनकी आशा व्यर्थ, कर्म निरर्थक, ज्ञान वृथा और चित्त भ्रष्ट यानी विवेकरहित होता है। वे मोहात्मक राक्षसी और आसुरी स्वभावका आश्रय किये रहते हैं।

किन्तु दैवी प्रकृतिका आश्रय करनेवाले महात्मा लोग मुझे सब भूतोंका सनातन कारण और नाशरहित रूपमें पहचानकर अनन्यभावसे मेरा भजन किया करते हैं। दृढ़ निश्चयवाले वे भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करते हुए मुझे बार-बार प्रणाम करते हुए, सदा मेरे ध्यानमें संलग्न हो अनन्य-भक्तिसे मेरी उपासना किया करते हैं। ये किस-किस प्रकारसे मेरी उपासना करते हैं, यह सुनो। इनमें कुछ तो मुझ विराट्स्वरूप परमात्माकी ज्ञानयज्ञ द्वारा पूजन करते हुए मेरी एकत्व-भावसे उपासना करते हैं। अर्थात् वासुदेव ही सब कुछ है, यह मानकर एक परब्रह्मरूपसे मेरी उपासना करते हैं। दूसरे लोग पृथक्भावसे यानी आदित्य, चन्द्र आदि भेदभावसे मेरी उपासना करते हैं। कुछ लोग यह मानकर कि अनेक रूपोंमें वह परमात्मा ही स्थित है, बहुभावसे मेरी उपासना किया करते हैं।

अर्जुन! ये लोग अनेक प्रकारोंसे यानी बहुभावसे मुझ एककी उपासना कैसे करते हैं, यह जानना चाहते हो तो सुनो। वे मानते हैं कि मैं ऋतु यानी श्रौतयज्ञ और यज्ञ यानी पञ्चमहायज्ञादि स्मार्तयज्ञ हूँ। स्वधा अर्थात् पितरोंको दिया जानेवाला अन्न मैं हूँ। ओषधियाँ एवं वनस्पतियाँ मैं हूँ। मैं वह मन्त्र हूँ जिन्हें पढ़कर देवता एवं पितरोंको हवि दी जाती है। मैं ही घृत, मैं ही जिसमें वह होमा जाता है वह अग्नि हूँ और हवन क्रिया भी मैं ही हूँ। मैं ही इस जगत् पिता और माता, धाता यानी प्राणिमात्रको कर्मफलका दाता, पितामह, हूँ। जो कुछ पवित्र और जानने योग्य (ज्ञेय) है, वह और अहंकार, ऋग्वेद, सामवेद तथा

(शेष पृष्ठ १२ पर)

उद्‌बोधन !

— १ —

कौन कहे, नश्वर तू अचिरन्तन, क्षीयमाण—
विगलित जल-बुद्‌बुदवत्, आप्लावित अनुपल रे !
सत्यं मनुज-तनुज नहीं, तू, सन्तत अमृत-पुत्र—
सृष्टि - बीज - सम्पोषित तेरा अन्तस्तल रे !!

तू अनन्तशक्ति - स्रोत, ऊर्जस्वित कण - कणशः—
ज्योतिलय क्षण - क्षणशः, चेतन - रूपोज्ज्वल रे !
अवगुंठित-लुंठित मति, कुंठित गति-सा निरुद्ध—
आज महामानव, तू, विगत क्यों मनोबल रे !!

— २ —

तू तो आत्माभिराम, आप्तकाम, पुण्यधाम—
फिर, अतृप्त क्यों सकाम भटक रहा थल-थल रे !
पीडित क्यों क्षुद्र मृगमरीचिकाभिभूत - चित्त—
अस्थिर, क्यों, लक्ष्यहीन - दीन मनश्चंचल रे !!

छिटक पड़ा कूल - किनारेसे मँझधार - बीच—
भूल मूल, तूल गया पानेको दल - दल रे !
निरवधि उच्छलित, रस - तरंगित आनंदसिंधु—
हो असीम जिसमें, वही प्यासा क्यों उर-तल रे !!

— ३ —

स्वस्थ, योग-सिद्धि-समाधिस्थ अटल हिमगिरि जो—
अन्तर्मुख, क्यों ये, अन्तस्तलमें हलचल रे !
वाडवाग्नि पीकर जो अन्तर्मनसे प्रशान्त—
आज उस महोदधिमें कैसी ये खलबल रे !!

समरसताकी अटूट कड़ियोंसे जो निबद्ध—
वही शिथिल, विचलित-मन, कैसे विशृंखल रे !
आत्मालोचन - निमग्न, जो, संयमशील - व्रती—
उसके मनके कपाट, क्यों नहीं, अनर्गल रे !!

— श्री गोकुलानन्द तैलङ्ग —

कृष्णने मिट्टी क्यों खायी ? : हरिसूरिके शब्दोंमें

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज

★

[भागवत, दशम स्कन्धके आठवें अध्यायके ३२ से ३५वें श्लोकतक परम भागवत शुकाचार्यने लिखा है कि एकबार दाऊजी प्रभृति गोपवालकोंने मैया यशोदासे आकर कहा कि 'माँ! कन्हैयाने मिट्टी खा ली ?' माँ लालाका हाथ पकड़कर पूछती है कि 'क्यों रे, चुपकेसे मिट्टी क्यों खायी ?' लाला साफ इनकार करते हैं : 'नाहं भक्षितवानम्ब !' मैया, मैंने मिट्टी नहीं खायी। प्रश्न है कि तब उन्होंने क्या खाया और क्यों खाया ? पूज्य महाराजजी कहते हैं :]

कृष्णने मिट्टी क्यों खायी ? इसपर बहुत-सी उत्प्रेक्षाएँ हैं। अबसे डेढ़ सौ वर्ष पूर्व नासिकमें श्रीमद्भागवतके एक अच्छे विद्वान् हुए हैं श्री हरिसूरि। उन्होंने संस्कृतमें भागवतके केवल दशम स्कन्ध, पूर्वार्धपर साढ़े चार सहस्र श्लोक लिखे हैं। उनके ग्रन्थका नाम है भक्तिरसायनम्। उसमें वे यह प्रश्न उठाते हैं कि श्रीकृष्णने मिट्टी क्यों खायी ? उत्तरमें—

१. वे कहते हैं : ये ग्वाल-वाल विश्रृङ्खल-विहारी हैं। श्रीकृष्णके साथ कोई मर्यादा नहीं मानते। कोई कन्धेपर चढ़ जाता है, कोई लड़कर उन्हें धरतीपर पटक देता है। कोई गाली देता है। कोई चाँटा भी लगा देता है। ऐसी स्थितिमें श्रीकृष्णको इनपर क्रोध आ जाय तो ? किन्तु नहीं, जब सखा बनाया, मैत्री जोड़ी तो इनके अपराधको क्षमा भी करना चाहिए। संस्कृतमें पृथ्वीका एक नाम 'क्षमा' भी है। अतः क्षमांशविधृति विना—क्षमांश बिना धारण किये ग्वाल-बालोंको क्षमा कैसे करें ? इसलिए थोड़ा-सा क्षमांश (पृथ्वीका अंश) मुखमें ले लिया।

२. संस्कृतमें पृथ्वीका एक नाम 'रसा' भी है। सोचा कि इसे 'रसा' तो सब कहते हैं, पर इसमें रस क्या है ? तनिक चखकर तो देख लें।

३. भूभारहरणं कार्यं तद् भूपरागहरणेन। पृथ्वीका भार दूर करना है, तो पृथ्वीपर जो उपराग या ग्रहण है, उसे दूर करना होगा। लेकिन जब मिट्टी खायी तो बलरामजीने हाथ पकड़ा और बोले : 'भूभारहरण करने आये हो तो भू-परागका हरण मत करो। भूपराग का हरण करो।

४. कहते हैं : जिसपर कोई अनिष्ट हो, उससे थोड़ा दान करवाना चाहिए। पृथ्वी बड़े संकटमें है, अतः इससे दान कराओ, जिससे इसका संकट दूर हो। दान किसे दें ? ब्राह्मणोंको दान दो। द्विजको दान दो। ब्राह्मण कहाँ मिलेंगे ? श्रीकृष्णने कहा : मेरा मुख

ही ब्राह्मण है : ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। फिर मुखमें पूरे बत्तीस द्विज (दाँत या ब्राह्मण) भी बैठे हैं। द्विजातिको दान करनेसे संकट दूर होता है।

५. संसारमें जब कष्ट आये, आसुरी वृत्ति बढ़े तो ब्राह्मणोंको भी उसे दूर करनेके लिए कुछ करना चाहिए। किन्तु वे तो होते हैं सात्त्विक। उन्हें इन विषयोंसे क्या प्रयोजन ? भगवान्‌ने कहा : ऐसे समय इनके भीतर थोड़ा रजोगुणका सन्निवेश होना चाहिए। पृथ्वीकी रज लेकर उन्हें लगा दी कि अब तुम पृथ्वीका भार हरण करनेमें लग जाओ।

६. भगवान् पृथ्वीका भार दूर करना चाहते हैं, इसके लिए दो बातें चाहिए—शिष्टोंका पालन और दुष्टोंका दमन : **परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।** इनमें से शिष्ट-पालन, साधु-परित्राणके लिए सत्त्व तो उनके समीप स्वाभाविक है, किन्तु दुष्टनाशके लिए चाहिए रजोगुण, जो उनके समीप नहीं है। अतः उन्होंने सोचा—लाओ पृथ्वीसे इसे ले लें। इसीका दुष्टोंने अनिष्ट किया है, अतः इसीसे रजका संग्रह करके उनका नाश करें।

७. भगवान् विश्वात्मा हैं। उनके उदरमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड रहते हैं। उन सबने सोचा—इस समय भगवान् व्रजमें प्रकट होकर लीला कर रहे हैं। व्रजकी धूलि बड़े-बड़े देवताओंको दुर्लभ है।

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।

अर्थात् ब्रह्माजीने कहा : मुझे मोक्ष नहीं चाहिए, जन्म चाहिए। जन्म भी ब्रह्मलोकमें नहीं, व्रजमें। व्रजमें भी मथुरामें नहीं, गोकुलमें। गोकुलमें भी ऐसा जन्म चाहिए कि किसी गोकुलवासीकी चरणोंकी धूलि उड़कर हमपर पड़े। इस प्रकार व्रजमें तो सारी महिमा रजकी है। 'व्रज'में-से तनिक रजको अलग करो तो क्या रहा ? कुछ भी तो नहीं रहता। 'ब्रह्म-रज' शब्दमें-से 'ह्म' और 'र' का लोपकर आदि और अन्तके अक्षरमें जोड़ देनेसे 'व्रज' बना है, जैसे कि 'शतक्रतु' शब्दमें से 'त' और 'तु' का लोप होनेपर 'शक्र' शब्द बनता है। अंग्रेजीमें दो शब्दोंका नाम हो तो दोनोंके प्रथमाक्षर लिखते हैं, वैसे ही यह संस्कृतकी प्रणाली है। व्रजकी रज ही ब्रह्ममय है। अतः भगवान्‌के उदरमें स्थित अनन्तकोटि जीव प्रार्थना करते हैं : 'प्रभो! जिसके लिए ब्रह्मादि बड़े बड़े महापुरुष प्रार्थना करते हैं,वह थोड़ी-सी व्रजरज हमें भी मिले।' अतएव श्रीकृष्णने उनकी प्रार्थना पूरी करनेके लिए थोड़ी-सी रज उठाकर मुखमें डाल ली।

८. आगे दूसरी बात कहते हैं कि श्रीकृष्ण स्वयं अपने भक्तोंकी चरण-धूलिसे प्रेम करते हैं। उन्होंने कहा है :

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूययेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।

अर्थात् मैं सदा महात्माओंके पीछे-पीछे चलता हूँ कि उनकी चरण-धूलि पड़े और पवित्र हो जाऊँ। इसीलिए वे व्रज-रज उठाकर मुखमें डालते हैं :

●

श्रीकृष्ण-चरित्र : ९

दुग्धपान

श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र'

★

साष्टाङ्गपातमभिवन्द्य समस्तभावैः सर्वान् सुरेन्द्रनिकरानिदमेव याचे ।
मन्दस्मितार्द्रमधुराननचन्द्रबिम्बे नन्दस्य पुण्यनिचये मम भक्तिरस्तु ।।—श्रीलीलाशुक

नन्दनन्दन आज ग्यारह दिनका हुआ। आज इसका नामकरण होना चाहिए था। अभी परसों ही माता रोहिणीने कहा था : 'नीलमणिका तो नामकरण हो ही जाय।'

'व्रजेश्वर कैसे स्वीकार कर सकते हैं कि यह अपने अग्रजसे पहले संस्कृत हो!' दाऊके जन्मके समय ही मथुराके कारागारमें समाचार भेजा गया था। श्रीवसुदेवजीने कहला दिया : 'शीघ्रताकी आवश्यकता नहीं है!' अभी उनके कारागार-मुक्त होनेपर भी चर पूछने गया था। जब वे टालते जा रहे हैं तो कोई बड़ा कारण होना चाहिए।

इसका संस्कार भी अपने बड़े भाईके साथ ही होगा!'—व्रजपतिने तो टाल दिया; किन्तु गोप-गोपियोंके हृदयमें कितनी उमंग थी, कितना उल्लास था : आज कुमारका नामकरण होता······कैसे होता? सभी समझते हैं, यह कैसे हो सकता है। आज नामकरण न सही, कल दोलाशयन तो होगा ही। सबका उत्साह कलपर केन्द्रित हो गया है। सब कलकी प्रस्तुतिमें जुट गये हैं।

× × × ×

श्रीव्रजराज-कुमार आज पलनेमें पौढ़ेगा! आज यह बारह दिनका हुआ। यह स्नेहकी मञ्जु प्रतिमा—पलनेका मन्द-मन्द हिलना भी अभी सह सकेगा यह सुकुमार? अभी तो यह स्थिर पलनेमें ही शयन करता है। शिशुके अङ्ग-विकासके लिए गति चाहिए, गति तो झूलेमें ही मिलेगी उसे। आज झूलते पलनेमें झूलना प्रारम्भ करेगा यह चञ्चल!

महर्षि शाण्डिल्य पधारे और पधारे उनके साथ शतशः द्विजवृन्द। आज श्री शेषशायीका पूजन होना है। यह उज्ज्वल दुग्धधवल प्राङ्गण और आज तो व्रजराजने इसे क्षीराब्धि बना दिया है। भगवान् अनन्तशायीकी यह दिव्य झाँकी—नन्दभवनके प्राङ्गणमें साक्षात्

नारायण जैसे अपनी अनादि शय्यापर व्यक्त हो गये हों ! ये रजतश्मश्रु, वलीपलित-काय, तेजोमूर्ति ऋषिगण सस्वर सामके मन्त्रोंसे उन्हीं परात्पर पुरुषकी तो स्तुति कर रहे हैं ।

महर्षिने गणपति, नवग्रहादिके साथ आवरण-देवता, पार्षद, परिकर—सबकी पूजा सम्पन्न करा दी और अब तो व्रजेन्द्र अपने कुमारको अङ्कमें लेकर अपने आराध्यका पूजन कर रहे हैं : 'भगवान् नारायण इस शिशुपर प्रसन्न हों !' शङ्खध्वनि, मन्त्रपाठ एवं सबसे ऊपर गूँजता यह जयघोष ! गगनसे निरन्तर झरती पुष्पवृष्टि और देववाद्य तो आज गोकुलके वाद्योंकी प्रतिध्वनि हो गये हैं ।

यह मणि-मण्डित स्वर्ण-पलना और उसमें लगे ये सजीव-से मणिमय शुक-सारिकादि ! इन्द्रनील, पद्मराग, महामाणिक्यके ज्योतिःपुञ्ज खिलौने ! इस नन्हें नीलसुन्दरके लिए तो यह नन्हा क्षीराब्धि ही बहुत है । पलनेका यह उज्ज्वल सुकोमल आस्तरण—इसपर यह अपने चरण उछालता किलकेगा ! क्षीराब्धि भी कदाचित् आज इस पलनेमें अपनेको एक करके कृतार्थ हो होता ।

महर्षि पूजा करा रहे हैं पलनेकी, रज्जुकी और क्रीड़ा-उपकरणोंकी । मैयाकी गोदमें आया यह श्याम ! उच्च, उच्चतर, उच्चतम वाद्य, शङ्खनादकी प्रणव-ध्वनि और मैयाने लो, धीरेसे रख दिया अपने नीलमणिको पलनेमें ।

'इसे मैं झुलाऊँगी !'—व्रजरानी उल्लसित हो गयी यह सुनकर । माता रोहिणीने आज एक आग्रह किया और वह भी धीरेसे उनके कानके समीप । परम सती, मङ्गलमयी और श्यामकी बड़ी माँ भी तो हैं ये । अपना स्वत्व कैसे छोड़ दें ?

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः··········।

विप्रोंका स्वस्ति-वाचन चल रहा है । गोप उछलने और अपनी कलाको मूर्त करनेमें लगे हैं । मागध, सूत, बन्दी अपने कण्ठको धन्य कर रहे हैं । गोपियोंके कलकण्ठको पाकर सङ्गीत सार्थक हो गया है और यह मधुमङ्गल ताली बजाकर नाच रहा है, कूद रहा है । यह दाऊ अपना मस्तक जैसे पलनेकी मन्द गतिके साथ धीरे-धीरे आगे-पीछे हिलाता, दोनों कर भूमिपर टेके अपने अनुजकी ओर देखता झूम रहा है ।

'कुमार' श्याम !' ये भगवती पूर्णमासी—ये अपने मङ्गलमय अभय-कर फैला रही हैं । व्रजेश्वरी इनके श्रीचरणोंमें मस्तक ही तो रख सकती हैं । इन जगदम्बाकी कोई और क्या सेवा करेगा ?

माता रोहिणी—आज तो माताको जैसे अपनी ही सुधि नहीं है । महोत्सव चल रहा है । इतना आनन्द-कोलाहल मचा है मानो उनके पास कोई है ही नहीं । वे तो कुछ गा रही हैं, कुछ लोरीको भाँति धीरे-धीरे गा रही हैं । वे आनन्द-विभोर पुलकित-तन इस प्रकार गा रही हैं, मानो उनका मन्दस्वर यह नीलसुन्दर सुन रहा हो । पलनेकी रज्जु—इस रज्जुने जैसे हृदयका राग पाया है । माताके कर हिल रहे हैं और हिल रहा है यह पलना !

नन्दनन्दन किलक रहा है, अपने कर एवं चरण उछाल रहा है। यह भी अपनी बड़ी माँको ही देख रहा है। कुछ कह रहा है, अपनी किलकमें। कुछ संकेत कर रहा है अपनी चेष्टामें। इसे भी इस समय बड़ी माँ ही दीखती है! और लोग हैं, और शतशः नेत्र प्रतीक्षा कर रहे हैं कि यह एकबार देखे तो सही। सहस्रशः कण्ठ इसीके कर्णोंतक अपनी ध्वनि पहुँचानेके प्रयासमें हैं और यह—यह तो बड़ी माँके हिलते अधर देखकर किलक रहा है। झूल रहा है मन्द-मन्द इसका यह पलना!

× × × ×

श्री व्रजराज-कुमारको प्रथम कौन गोदुग्ध-पान करायेगा? इसकी धात्री होनेका सौभाग्य किसे मिलेगा? किसके हृदयमें लालसा नहीं है? कौन उत्कण्ठित नहीं है? मैया क्या करे—वह किसे कहे, और किसे अस्वीकार कर दे। उसका श्याम है तो सभीका। उसकी सभी जेठानियाँ और देवरानियाँ उत्सुक हैं। सभी गोपियाँ कहते-कहते रह जाती हैं: 'व्रजरानी, अपने लालकी धाय तो बना लेना हमें!' सबके मनमें एक संकोच है, दूसरेकी लालसापर ठेस न लगे।

उस दिन उपनन्दपत्नीने कहा था: 'समयपर ही निश्चय हो जायगा!' उनका ही प्रथम स्वत्व है, वे ही सबसे बड़ी हैं; किन्तु वे धाय बनेंगी? उन्होंने आग्रह किया तो कौन रोक लेगा? समय ही कहाँ दूर है। कल ही तो यह इकतीस दिनका होगा। कल ही तो इसे गोदुग्ध दिया जायगा। व्रजेश कह रहे थे कि कपिलाने आज उन्हें देखते ही हुंकार की और उसके स्तनोंसे दूध झरने लगा।

महर्षि शाण्डिल्यने आदेश दिया है, आज तीन दिनसे कपिला केवल दूध पी रही है। एक लक्ष कपिला गौएँ ओषधि-तृणोंपर रहती हैं और उनका दूध एक सहस्र गायें पीती हैं। उन सहस्र गायोंके दूधसे एकशत पद्मगन्धा कपिला गौएँ तृप्त होती हैं और वे अपने दूधसे व्रजराजकी दस मुख्य धेनुओंको सन्तुष्ट करती हैं। यह नीलोत्पलदिव्यगन्धा कपिला, यह कामदा तो उन दसके दूधसे अर्चित हो रही है। कल श्यामको दूध पिलायेगी। यहाँ कन्हाई इसके अमृत-पयका प्राशन करेगा। आज इसके चारों स्तनोंसे अखण्ड धारा चल रही है ओर वह बन्द ही नहीं होनेको आती। महर्षिने आजसे ही भगवान् शंकरका अखण्ड सहस्राभिषेक प्रारम्भ कर दिया है। कामदा तो अकेली ही उस अभिषेकके लिए दूध देनेपर तुली जान पड़ती है। वह नन्दनन्दनको दूध पिलायेगी—उसकी दुग्धाधारमें क्षीरोदधि ही आ बसा हो तो क्या पता? इतना सुरभित क्षीराब्धिका पय हो सकता है, यह कौन विश्वास करेगा?

× × × ×

'व्रजेश्वरी! लाओ, लालको मुझे दो!' ये भगवती पूर्णमासी! इसके करोंमें यह दिव्य ज्योतिर्मय दक्षिणावर्त नन्हा-सा शङ्ख, सचमुच क्षीर समुद्रसे ही निकला है। पूर्णिमाको वह इस शङ्खकी छटाको कुछ-कुछ पा लेता है। मैयाने, माता रोहिणीने, सबसे समझा तो यही था कि भगवती आज कुमारको दुग्धपानके लिए यह शङ्ख प्रसादरूप प्रदान करने आयी

हैं; परन्तु इन्होंने तो शङ्ख दिया नहीं। ये तो श्यामको अङ्कमें लेकर पूर्वाभिमुख बैठ गयीं उसका सिर दक्षिण करके। 'ये महिमामयी, ये साक्षात् जगदम्बा, ये क्या······।'

'व्रजराज, तुम्हारे युवराजकी यह धात्री बैठी है! यह रहा शङ्ख! इसका पूजन करो और मुझे दूध दो! मेरा लाल दूध पियेगा!'—भगवतीने तो सबको एक क्षणके लिए स्तब्ध, आश्चर्यचकित कर दिया।

'जगदम्बा!'—बाबाने चरणोंपर मस्तक रख दिया आतुरतापूर्वक। उनका भरित कण्ठ और कुछ नहीं कह सकता; किन्तु नेत्रोंने भगवतीके श्रीचरण प्रक्षालित कर दिये।

'करुणामयी माँ!'—मैयाने अञ्चल फैलाकर भूमिपर मस्तक रखा। उसके कण्ठसे ये शब्द भी नहीं निकले।

'भगवती पूर्णमासी श्यामको दूध पिलायेंगी!' गोपोंको, गोपियोंको जैसे चारों पुरुषार्थ एक साथ प्राप्त हो गये। जैसे साक्षात् जगज्जननी, महामायाने उनके युवराजकी धात्री बनकर उन्हें कृतार्थ किया है!

महर्षि शाण्डिल्य—वे तपोधन; केवल वे ही अपने मन्त्रपाठमें शान्त, सुस्थिर हैं। वे तो निश्चल स्वरमें उस नन्हे शङ्खको मार्जन करने लगे हैं। उनका तो भाव ही कहता है कि 'यह तो पहलेसे जान लेनेकी बात थी—भला, व्रजराज-कुमारकी धात्री और कोई कैसे बन सकती थी!'

× × ×

'सौष्ठव, तुम तनिक दूध तो पी लो!' यह दुग्ध-धवल चञ्चल सौष्ठव—कामदाका यह चपल बछड़ा, यह तो बार-बार पकड़कर लानेपर भी माताके स्तनोंसे मुख ही नहीं लगाता। गणपति, नवग्रहादि कभीके पूजित हो चुके। अग्निदेवने श्रद्धापूत आहुतियाँ प्राप्त कर लीं। पितर तृप्त हो चुके और कामदा तथा इस चञ्चल सौष्ठवका भी पूजन हो गया। महर्षिने शङ्खकी पूजा सम्पन्न करा दी और आज व्रजरानीको सौभाग्य मिला भगवती पूर्णमासीके श्रीचरणोंकी अर्चाका। अब तो श्यामको दूध पिलाना है। आचार्यने अर्चा ग्रहण करके आशीर्वाद दे दिया और दोहन करनेके लिए नवीन वस्त्राभरणोंसे सज्जित ये व्रजराजके लघुभ्राता प्रस्तुत ही हैं स्वर्णपात्र लिये, पर बिना बछड़ेके मुख लगाये तो गोदुग्ध पीनेयोग्य नहीं होता। यह चञ्चल सौष्ठव बार-बार भाग जाता है। अपने गलेमें पड़ी मालाको हिलाता, फुदकता यह भाग जाता है भगवती पूर्णमासीके समीप और तनिक दूरसे ही श्यामको सूँघनेका प्रयत्न करके मस्तक घुमा-घुमाकर कूदता है। श्याम भी तो इसीकी ओर देखकर किलक रहा है। यह तो जैसे कूदकर समझा रहा है—'तू यहाँ क्यों लेटा है? आ, मेरे साथ कूद! देख न, मेरी माँके स्तनोंसे कितना उजला, कितना मीठा दूध झर रहा है! चल, पी ले ना! पहले तू पी ले तब मैं पीऊँ।'

'चल, तू दूध पी ! मेरी बात नहीं सुनेगा तो दाऊ कान पकड़ेगा तेरे ।'—मधुमङ्गल ठीक कहता है । यह दाऊ अपने नन्हे हाथ कान पकड़नेको ही तो उठा रहा है ।

'दूध ! दूध !' दाउ भी समझ गया है कि दूध तो पहले इसीको पीना है । यह बछड़ा नहीं मानता तो वह अपने हाथों इसे पकड़नेका प्रयत्न करने लगा है । यह दूध पी ले तभी तो उसके छोटे भाईको दूध मिले । पता नहीं क्या बात है ! मधुमङ्गलकी बात ये गायें, ये वृषभ और ये नन्हे बछड़ेतक समझ लेते हैं । देखो न, इसने कहा और सौछव कूद गया माताके समीप । अब तो वह एक-एक स्तन क्षण-क्षणमें बदल रहा है । उसे दूध कहाँ पीना है । मधुमंगल कहता है—जैसे यह समझकर ही वह नाम कर रहा है दूध पीनाका ।

× × ×

'लाल ! यह पद्ममधुश्रित, नारायणका प्रसाद धारोष्ण दूध है ! तनिक पी तो सही !' भगवती पूर्णमासी तो आज सचमुच जगज्जननी, वात्सल्यमयी हो गयी हैं । यह किलक रहा है नीलसुन्दर उनके मुखकी ओर देखता उनके अङ्कमें और अब उनके दक्षिण करका यह शङ्ख—वे तो एकटक देख रही हैं । वे देख रही हैं और श्याम किलक रहा है । अपने कर एवं चरण ऊपर उठा-उठाकर वह अब शङ्खको देख रहा है, सम्भवतः उसे पकड़ना चाहता है । इस चञ्चलको दूध पिलाना है और यह शङ्खको ही पकड़नेके प्रयत्नमें है ।

नन्हे लाल अधर, खुला किलकता दन्तहीन मुख, शङ्खको पकड़नेको उत्सुक कर और भगवतीने अधरोंसे तनिक-सा शङ्खका मुखाग्र लगाकर एक बिन्दु गिरा दिया मुखमें । हाथ, पैर वेगसे हिलाकर यह चाटने लगा है दूधका वह बिन्दु ! महर्षिका सामगान, विप्रोंका स्वस्ति-पाठ, गोपोंका शङ्खनाद और जयध्वनि, गोपियोंका कलगान—सब उन्मद हर्षमें झूम उठे हैं । सब झूम उठे हैं और अब कौन देखे कि मधुमंगल तालियाँ बजाकर नाच रहा है ।

अधरोंकी यह दुग्धस्नात अरुणाभा—इसने अन्ततः शङ्खको हिला ही दिया । यह चिबुक-पर समुज्ज्वल बिन्दु और यह दूध चाटते हुए नन्दनन्दनकी शोभा ! भगवती पूर्णमासी तो हाथका शङ्ख भी अब उपनन्दपत्नीको देना भूल गयी हैं । वे तो एक हाथमें उसे उठाये मूर्ति बन गयी हैं ।

एक बार अपनी कामनाओं—इच्छाओंकी निगरानी करो । तुम स्वार्थ और परमार्थ, भोग और मोक्ष एक साथ चाहते हो ? सम्भव है ऐसा ही हो; पर तुम्हारे चित्तमें जो परमार्थप्राप्तिकी उत्कट इच्छाका अभाव है, वह तो तुम्हारी दुर्बलता ही है । उसे निकालनेके लिए तत्पर हो जाओ !

गीता : कर्मयोगीकी दृष्टिमें

श्री गोविन्द नरहरि वैजापुरकर

★

[इसी मासकी पहली तारीखको देशभर लोकमान्यकी तिलककी जयन्ती धूमधामसे मनायी गयी ।]

यह सच है कि आधुनिक युगके ऋषि कर्मयोगी लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलकने अंग्रेजोंकी कूटनीतिक चिरदासताके बन्धन तोड़ फेंकनेके लिए ही अपनी दिव्य-दृष्टिसे दृष्ट 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' यह मन्त्र भारतीय जनताके कानोंमें फूंका और सौभाग्यसे आज हम स्वतन्त्र हैं। फिर भी उनका 'स्वराज्य किसी भौगोलिक सीमा-विशेषतक ही सीमित न रहकर अध्यात्मके विराट् आकाशको भी नाप लेता है। वे चाहते थे कि पुण्यभू भारतमें न केवल राजनैतिक रूपका स्वदेशी-शासनात्मक ही 'स्वराज्य' हो। प्रत्युत उसे स्थिर-स्थावर करनेवाला 'स्व' अर्थात् सत्-चित्-आनन्दघन आत्माका अखण्ड राज्य भी प्रस्थापित हो जाय। दूसरे शब्दोंमें प्रत्येक व्यक्ति आत्मज्ञान, मोक्षसुखका लाभ उठाये। यदि ऐसा नहीं होता तो कोई कारण नहीं कि लौकिक स्वराज्य-आन्दोलनमें माण्डलेकी जेलकी यातनाएँ सहते हुए भी लोकोत्तर अध्यवसाय और अदम्य शारीरिक श्रम उठाकर मात्र १७ महीनोंमें 'गीतारहस्य या कर्मयोगशास्त्र' जैसा ग्रन्थराज लिख डालनेकी अद्भुत प्रेरणा उन्हें प्राप्त होती ! यह स्वाभाविक है कि इस 'गीतारहस्य' पर उनके प्रखर कर्मयोगकी छाप पड़े। इसीलिए उन्होंने अबतकके आचार्योंके गीता-तात्पर्यसे भिन्न भक्तिप्रधान निष्काम कर्म-योगको ही गीताका महातात्पर्य बताया।

लोकमान्यने 'गीतारहस्य'को 'कर्मयोगशास्त्र' नाम देकर अन्य शास्त्रकारोंकी तरह ही जिज्ञासापूर्वक उसका प्रारम्भ किया है : अथातः कर्मजिज्ञासा। उसके 'विषय-प्रवेश' नामक प्रथम प्रकरणमें 'अथ अतः' इन दो-पदोंकी व्याख्याकर द्वितीय प्रकरणमें 'कर्म-जिज्ञासा' का विश्लेषण करते हुए तृतीयमें उन्होंने कर्मयोगकी शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की है। उसीके पोषणार्थ बाधक तत्त्वोंका निराकरण एवं साधक तत्त्वोंके समुपन्यसन द्वारा मध्यके १० प्रकरण लिखकर १४वें प्रकरणमें उन्होंने गीताध्यायोंकी संगति बिठायी और १५वेंमें इस शास्त्रका उपसंहार किया है। जिसका अन्तिम अंश (अनुच्छेद, पैरा) नीचे दिया जा रहा है। इससे ग्रन्थकारका हार्द सुस्पष्ट हो जाता है।

"गीताधर्म कैसा है ? वह सर्वतोपरि निर्भय और व्यापक है। वह सम है अर्थात् वर्ण, जाति, देश या किसी अन्य भेदोंके झगड़ेमें नहीं पड़ता; किन्तु सब लोगोंको एक ही माप-तौलसे

सद्गति देता है। वह अन्य धर्मोंके विषयमें यथोचित सहिष्णुता दिखलाता है। वह ज्ञान, भक्ति और कर्मयुक्त है। और अधिक क्या कहें, वह सनातन-वैदिक धर्मवृक्षका अत्यन्त मधुर और अमृत-फल है। वैदिक धर्ममें पहले द्रव्यमय या पशुमय यज्ञोंका अर्थात् केवल कर्मकाण्डका ही अधिक माहात्म्य था। परन्तु फिर उपनिषदोंके ज्ञानसे यह केवल कर्मकाण्डप्रधान श्रौतधर्म गौण माना जाने लगा, और उसी समय सांख्यशास्त्रका प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु यह ज्ञान सामान्य जनोंको अगम्य था; और इसका झुकाव कर्मसंन्यासकी ओर ही विशेष रहा करता था। इसलिए केवल औपनिषद धर्मसे अथवा दोनोंकी स्मार्त एकवाक्यतासे भी सर्वसाधारण लोगोंका पूरा समाधान होना सम्भव नहीं था। अतएव उपनिषदोंके केवल बुद्धिगम्य ब्रह्मज्ञानके साथ प्रेमगम्य व्यक्त-उपासनाके राजगुह्यका संयोग करके कर्मकाण्डकी प्राचीन परम्पराके अनुसार ही अर्जुनको निमित्त करके गीताधर्म सब लोगोंको मुक्तकण्ठसे यही कहता है, कि 'तुम अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार अपने-अपने सांसारिक कर्तव्योंका पालन लोकसंग्रहके लिए निष्कामबुद्धिसे, आत्मौपम्यदृष्टिसे तथा उत्साहसे यावज्जीवन करते रहो और उसके द्वारा ऐसे नित्य परमात्म देवताका सदा यजन करो, जो पिण्ड-ब्रह्माण्डमें तथा समस्त प्राणियोंमें एकत्वसे व्याप्त है—इसीमें तुम्हारा सांसारिक तथा पारलौकिक कल्याण है।' इससे कर्म, बुद्धि (ज्ञान) और प्रेम (भक्ति) के बीचका विरोध नष्ट हो जाता है; और सब आयु या जीवन यज्ञमय करनेके लिए उपदेश देनेवाले अकेले गीताधर्ममें सकल वैदिकधर्मका सारांश आ जाता है। इस नित्यधर्मको पहचान कर, केवल कर्तव्य समझ करके, सर्वभूतहितके लिए प्रयत्न करनेवाले सैकड़ों महात्मा और कर्ता या वीर पुरुष इस पवित्र भरतभूमिको अलंकृत किया करते थे, तब यह देश परमेश्वरकी कृपाका पात्र बनकर न केवल ज्ञानके, वरन् ऐश्वर्यके भी शिखरपर पहुँच गया था। और कहना नहीं होगा, कि जबसे दोनों लोकोंका साधन यह श्रेयस्कर धर्म छूट गया है, तभीसे इस देशकी निकृष्टावस्थाका आरम्भ हुआ है। इसलिए ईश्वरसे आशापूर्वक अन्तिम प्रार्थना यही है कि भक्तिका; ब्रह्मज्ञानका और कर्तृत्वशक्तिका यथोचित मेलकर देनेवाले इस तेजस्वी तथा सम गीताधर्मके अनुसार परमेश्वरका भजन-पूजन करनेवाले सत्पुरुष इस देशमें फिर भी उत्पन्न हों।"

लोकमान्यने अपने इस विवेचनमें जहाँ समग्र भारतीय वाङ्मयका मन्थन कर डाला, वहाँ उन्होंने पश्चिमके अनेक ख्यातनामा एवं मान्य धर्मगुरुओं (पादरियों) तथा दार्शनिकोंका तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। यही नहीं, इन पाश्चात्य विद्वानोंकी जहाँ मति मुग्ध हो गयी, जहाँ वे भारतीय कल्पनाके पासतक पहुँच ही नहीं पाये, उसका भी निर्भीकता और धिष्टताके साथ उल्लेख कर दिया है।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते॥ (५.२)

इस गीता-वचनके अनुसार लोकमान्य कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनोंको मोक्षके दो पृथक्-पृथक् और स्वतन्त्र साधन मानते हुए भी कर्मसंन्यासकी अपेक्षा कर्मयोगको ही, लोक-

संग्रहका साधन होनेसे, श्रेष्ठ बतलाते हैं। दार्शनिकोंकी भाषामें वे कर्मको मोक्षके साधन ज्ञानका अंग या उपकारक न मानकर ज्ञानकी तरह ही स्वतन्त्र मोक्षसाधनके रूपमें प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका वह कर्म भी कर्मकाण्डियोंका शुष्क कर्म नहीं, बल्कि बुद्धिपूर्वक, ज्ञानपूर्वक हुआ करता है। साथ ही वह श्रौत-कर्मतक ही सीमित नहीं रहता, प्रत्युत कर्मके सर्वसामान्य अर्थ 'सब प्रकारकी हलचल' तक उसकी व्याप्ति है। सिवा इसके वह भक्ति या प्रेमसे भी संवलित रहता है। इस तरह इस कर्मयोगको इतना व्यापक, इतना विशिष्ट बनानेके बाद वे उसपर निष्कामताका भी पुट चढ़ा देते हैं, जिससे कर्मकी प्रकृतिसिद्ध बन्धकतारूप विषके दाँत भी टूट जाते हैं। इस तरह 'ज्ञानमूलक, भक्तिप्रधान निष्काम कर्मयोग' उनके मतसे कर्मसंन्याससे कहीं अधिक उपादेय एवं व्यावहारिक है। कारण, वही लोकसंग्रहके काम आता है और भगवान् भी यही आदेश देते हैं कि लोकसंग्रहका आदर्श देखते हुए भी अर्जुन तुम्हें कर्म करना चाहिए।

लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि। (३.२०)

अन्यत्र वे कहते हैं कि पार्थ, तीनों लोकोंमें मेरेलिए कोई कर्तव्य शेष नहीं और न किसीसे मुझे कुछ लेना-देना ही है। फिर भी मैं कर्म किये ही चलता हूँ। यदि सतर्कताके साथ ऐसा न करता रहूँ तो लोग मेरा ही अनुकरण करेंगे और कर्मका पल्ला त्यागनेसे उखड़ जायेंगे। तब उन्हें उखाड़ने, समाप्त कर देनेका पाप मेरे सिर चढ़ जायगा। (गीता ३.२२-२४)

लोकमान्यका अभिमत है कि यहाँ भगवान् तो उपलक्षण हैं। सामान्य जनता सामान्यतः सम्मान्य जनोंका ही अनुकरण किया करती है। यदि वे सम्मान्य पुरुष ही हाथपर हाथ धरकर बैठे रहें तो स्पष्ट है कि जनता भी उन्हींका अनुवर्तन करेगी। फलतः हिमालयकी चोटीपर बैठकर उन सम्मान्य जनोंको अपनी ही तन्द्रावश अपनी अनुवर्तिनी अकर्मण्य जनताको नीचे मैदानके नरकमें बिलबिलाता देखनेका दुर्भाग्य प्राप्त होगा। अतएव कमसे कम उनके उद्धारार्थ तो ज्ञानोत्तर कर्मकी कर्तव्यता माननी ही चाहिए—इसमें किसी समझदारके दो मत नहीं हो सकते। जीवनभर जनताकी सेवामें लगे किसी प्रखर कर्मवीरके लिए ऐसा सोचना उसके व्यक्तित्वके अनुरूप ही कहा जायगा। प्राचीन आचार्योंकी शास्त्रयुक्तिपूर्ण निष्ठाएँ कभी उसके आड़े नहीं आ सकतीं।

लोकमान्य कहते हैं कि 'मेरे द्वारा उद्भावित यह गीताधर्म निष्काम कर्मप्रधान, प्रवृत्तिलक्षण नारायणधर्म या भागवतधर्म ही है जो महाभारतके नारायणीयोपाख्यान (महाभा० शान्ति० ३३४—५१ : १८ अध्यायों) में वर्णित है। अतएव यह ज्ञानपूर्वक भक्तिप्रधान निष्काम कर्मयोगका सिद्धान्त औपनिषद है।' उनकी युक्ति है कि जहाँ बृहदारण्यक, छान्दोग्य आदि उपनिषदें ज्ञानको ही मोक्षका साधन मानती हैं वहीं मैत्र्युपनिषद्, ईश, कठादि उपनिषदें ज्ञानकी तरह ही कर्मको भी मोक्षका साधन बतलाती हैं।[1] भक्ति तो ज्ञानमार्गसे ही निकली एक धारा है। ज्ञानमार्गके अनुसार अव्यक्तमें निष्ठा स्थिर करनेके लिए व्यक्तका

---

१. कुर्वन्नेवेह कर्माणि······।—(ईशावास्योपनिषद्, २)

आश्रय अनिवार्य होनेसे सगुणोपासनात्मिका भक्तिकी यह धारा चल पड़ी और वह उन्हीं सगुण राम-कृष्णादिको ब्रह्म मानकर बुद्धिसे अग्राह्य ब्रह्मको भी युक्तिसे गृहीत कर लेती है।

दृष्टान्तों द्वारा अपने इस मार्गकी प्राचीनता समझाते हुए वे कहते हैं कि 'जहाँ कर्म-संन्याससे मोक्षकी चोटी पकड़नेवाले शुक आदि मुनि पाये जाते हैं, वहीं कर्मयोगकी राजविद्या-राजगुह्यका राजमार्ग अपनाकर जीवन्मुक्त बननेवाले जनकादि योगिराज राजर्षि भी सौभाग्यसे हमारे लिए नमस्यरूपमें सुलभ होते हैं।'

यही नहीं, इस धर्मका इतिहास बतलाते हुए वे कहते हैं कि 'गीता महाभारतीय नारायणीयोपाख्यानमें वर्णित भागवत-धर्म ही बतलाती है। सर्वप्रथम यह निष्काम कर्मप्रधान, प्रवृत्तिमार्गात्मक भागवतधर्म परब्रह्मावतार नर और नारायण नामक दो ऋषियोंने प्रवर्तित किया। उनके आदेशपर जब नारदजी श्वेतद्वीप पहुँचे तो भगवान्‌ने नारदको इस धर्मका उपदेश दिया। गीताके शब्दोंमें भगवान् कहते हैं कि अर्जुन, यह कर्मयोग मैंने विवस्वान् सूर्य नारायणको बतलाया। विवस्वान्‌ने महाराज मनुको, मनुने इक्ष्वाकुको बतलाया। परम्परासे वह योग अनेक राजर्षियोंतक संक्रान्त हुआ और उससे उन्होंने अपना-अपना उद्धार कर लिया। किन्तु स्मृतिकी नाशक कालकी दीर्घताने उसपर आवरण डाल दिया। आज तुम मेरे प्रिय जिज्ञासु मित्र मिल गये तो तुम्हारे समक्ष इस अत्यन्त उत्तम प्राचीनतम योगरहस्यको प्रकट कर रहा हूँ :

इमं विवस्वते योगम्......' (गीता ४. १–३)

अब महाभारत, शान्तिपर्वके अन्तमें जो नारायणीय या भागवत-धर्म निरूपित है, उसे देखें। वहाँ ब्रह्मदेवके अनेक जन्मों या कल्पान्तरोंमें भागवत-धर्मकी परम्पराका वर्णन कर अन्तमें कहा है :

त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान् मनवे ददौ।
मनुश्च लोकभृत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ।
इक्ष्वाकुणा च कथितो व्याप्य लोकानवस्थितः॥

(महाभा० शा० ३४८.५१-५२)

दो भिन्न धर्मोंकी एक परम्परा होना सम्भव नहीं। इसलिए परम्पराकी एकताके कारण सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गीताधर्म और भागवत-धर्म एक ही है। दोनों धर्मोंकी यह एकता केवल अनुमानपर ही निर्भर नहीं। नारायणीय या भागवत धर्मके निरूपणमें वैशम्पायन स्वयं कहते हैं :

एवमेष महान् धर्मः स ते पूर्वं नृपोत्तम।
कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः॥

(महाभा० शा० ३४६. १०)

समुपोढेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवोर्मृधे ।
अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयम् ॥ (३४८.८)

नारायणपरो धर्मः पुनरावृत्तिदुर्लभः ।
प्रवृत्तिलक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मकः ॥ (३४७.८०-८१)

इस प्रकार स्पष्ट है कि गीतामें अर्जुनको दिया गया उपदेश महाभारतोक्त भागवत-धर्म ही है । अतएव यह कहनेमें कोई बाधा नहीं कि लोकमान्यके मतसे गीतोक्त यह कर्म-योग अनादि वेदमूलक है और यही है गीताका परम धर्म !

अब हम यहाँ लोकमान्यके इस ग्रन्थराजके केवल दो प्रकरणों—'कर्म-जिज्ञासा' और 'कर्मयोग-शास्त्र' (३-४) के कुछ विषयोंको संक्षेपमें देखेंगे जिसके आधारपर उन्होंने गीताको (निष्काम) कर्मयोगशास्त्र कहा है ।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः । (गीता ४.१६)

अर्थात् कर्म क्या है और अकर्म क्या, किंवा कर्तव्य क्या है और अकर्तव्य क्या, इसपर विचार करने बैठें तो मस्तिष्क चकरा जाता और बड़ी पेंचीदा स्थिति उपस्थित हो जाती है । कारण कोई भी धर्म या कर्तव्य अपनेमें निरपेक्ष या निरपवाद नहीं हुआ करता । कब कौन-सा कर्म धर्म होगा और कौन-सा अधर्म, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता । धर्म और अधर्म सदैव देश, काल और परिस्थितिसे सापेक्ष हुआ करते हैं । पहले कुछ विदेशी उदाहरण लें ।

सुप्रसिद्ध अंग्रेज नाटककार शेक्सपीयरका 'हैमलेट' नाटक ही लीजिये । डेन्मार्क देशके प्राचीन राजपुत्र हेमलेटके चाचाने राजकर्ता अपने भाई—हैमलेटके बापको मार डाला, हैमलेटकी माताको अपनी स्त्री बना लिया और राजगद्दी भी छीन ली । तब उस राजकुमारके मनमें यह झगड़ा पैदा हुआ, कि ऐसे पापी चाचाका वध कर पुत्र-धर्मके अनुसार अपने पिताके ऋणसे मुक्त हो जाऊं अथवा अपने सगे चाचा, अपनी माताके पति और गद्दीपर बैठे राजा पर दया करूँ ? इस मोहमें पड़ जानेके कारण कोमल अंतःकरणके हैमलेटकी कसी दशा हुई, श्रीकृष्णके समान कोई मार्गदर्शक और हितकर्ता न होनेके कारण वह कैसे पागल हो गया और अन्तमें 'जियें या मरें' इसी बातकी चिन्ता करते-करते उसका कैसे अन्त हो गया, आदि बातोंका चित्र नाटकमें बहुत अच्छी तरह दिखाया गया है ।

'कोरियोलेनस' नामके दूसरे नाटकमें भी इसी तरह एक और प्रसंगका वर्णन शेक्स-पीयरने किया है । रोम नगरमें कोरियोलेनस नामका एक शूर सरदार था । नगरवासियोंने उसे शहरसे निकाल दिया । रोमन लोगोंके शत्रुओंसे मिलकर उसने प्रतिज्ञा की, कि 'मैं तुम्हारा साथ कभी नहीं छोड़ूंगा ।' कुछ समयके बाद इन शत्रुओंकी सहायतासे उसने रोमन लोगोंपर हमला किया और अपनी सेना लेकर रोमन शहरके दरवाजेके पास आ पहुँचा । उस समय रोम शहरकी स्त्रियोंने कोरियोलेनसकी स्त्री और माताको सामने करके, मातृ-भूमिके सम्बन्धमें उसे उपदेश दिया । अन्ततः उसे रोमके शत्रुओंको दिये वचनको भंग करना पड़ा ।

कर्तव्य-अकर्तव्यके मोहमें फँस जानेके ऐसे और भी कई उदाहरण दुनियाके प्राचीन और आधुनिक इतिहासमें पाये जाते हैं। परन्तु हम लोगोंको इतना दूर जानेकी कोई आवश्यकता नहीं। हमारा महाभारत ग्रन्थ ऐसे उदाहरणोंकी एक बड़ी भारी खानी ही है।

भारतीय इतिहासका एक उदाहरण और लें। राणा प्रताप और उसके भाई शक्तिसिंहकी ही एक घटना घटी है। एकबार किसी लक्ष्यको दोनोंने एक साथ बाण मारे और लक्ष्य मारा गया। अब दोनों भाइयोंमें विवाद ठन गया कि मेरे बाणसे शिकार हुआ। बादमें बात बढ़ गयी और दोनोंकी म्यानोंसे तलवारें बाहर निकल आयीं। यह देख पासमें ही खड़े पुरोहित ब्राह्मणदेवता उनके बीच आये और झट अपनी कमसे कटार निकाल अपने हाथों अपना तमाम काम कर डाला। यह ब्राह्मणकृत आत्मवध देख दोनों भाई सहम गये और अपने अविवेकपर पश्चात्ताप करने लगे। अब देखें, यहाँ आत्महत्या जघन्यतम पाप है, पर राष्ट्ररक्षक दोनों महाशक्तियोंके बीच एककी व्यर्थ हानिसे राष्ट्रको बचानेके लिए की गयी आत्महत्या पुण्य या कर्तव्य बन जाती है।

अधिक क्या, महाराज मनुके अहिंसा सत्य, अस्तेय आदि धर्म भी, जो सर्वसामान्य धर्म हैं, इस सापवादताकी कक्षासे बाहर नहीं। हिंसा कभी न करनी चाहिए : **मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि।** अहिंसा बहुत बड़ा धर्म है, यह ठीक है। लेकिन कोई खड्गहस्त या बमबाज आततायी हमारी बहु-बेटियोंका सतीत्व लूटने या घर-नगर फूँकनेपर उतारू हो जाय तो क्या शक्ति रहते भी 'अहिंसाकी जय' बोलते बैठना धर्म होगा?

यही हाल सत्यका है, और यही स्थिति अस्तेय (चोरी न करना) धर्मकी भी है। दूर जानेकी आवश्यकता नहीं, महाभारतमें सत्यावतार धर्मराजको 'नरो वा कुञ्जरो वा' का झूठ बोलकर द्रोणाचार्य जैसी अदम्य शक्तिको नष्टकर दुर्योधनका युद्धका पलटा हलका करना पड़ा, भले ही स्वर्गारोहणके समय कुछ क्षणके लिए उनका रथ इस असत्यभाषणसे जमीनमें धँस गया हो।

इस तरह एक नहीं, कितने ही धर्म सापवाद बताये जा सकते हैं। प्रसंगका ध्यान रखकर तत्तत् स्थलमें युक्तिसे उन-उन अपवादोंको चुनकर ही धर्मकी रक्षा करनी पड़ती है। महाभारतने अनेक धर्मनिष्ठोंके आचारोंका चरित्र-चित्रण कर इस दिशामें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन किया है। स्वयं भीष्म पितामह कहते हैं कि ऐसा कोई आचार नहीं, जो सदैव सबके लिए समान हितकारी हो। एक आचारसे बढ़कर दूसरा आचार मिलता है तो वह तीसरेका बाध करता है :

नहि सर्वहितः कश्चिदाचारः संप्रवर्तते।
तेनैवान्यः प्रभवति सोऽपरं बाधते पुनः॥

(महाभा० शा० २५६.१७-१८)

लोकमान्य कहते है कि 'जब आचारोंमें इतनी भिन्नता होती है तो भीष्मपितामहके कथनानुसार तारतम्य या सारासारका विचार करना ही चाहिए।

प्रकृतमें अर्जुनको भी इस प्रकार कर्तव्य कर्मके विषयमें सन्देह हो गया है कि युद्ध करूँ या नहीं ? न करूँ तो कर्तव्यच्युत होता हूँ और करता हूँ तो वही गुरुजनवध, ज्ञाति-बान्धव-वधादिका पाप सिर चढ़ बैठता है। इसलिए भगवान् उससे कहते हैं कि कर्म-अकर्मके निर्णयमें बड़े-बड़े विद्वान्, क्रान्तदर्शी कवितक मोहमें पड़ जाते हैं। इसलिए तुम्हें वह कर्म बताता हूँ जिससे तुम अधर्मसे बच निकलोगे (गीता ४.१६)

आगे भगवान् वही युक्ति बताते हैं :

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ (४.१८)

अर्थात् जो कर्ममें छिपी अकर्मता और अकर्ममें छिपी कर्मताको देखता, समझता और तदनुसार आचरण करता है वही मुक्त या कर्मयोगी और सर्वकर्मकर्ता माना जाता है। तात्पर्य यह कि कोई कर्म करनेपर भी बन्धक नहीं होता तो उसमें अकर्मता आ जाती है और कोई अकर्म होते हुए भी बन्धक हो जाता है तो उसमें कर्मता आ जाती है। बन्धकता ही कर्म या अकर्मके विषके दांत हैं और उनसे बचनेपर ही वह कर्म या अकर्म धर्म बन जाता है। अतः बुद्धिमान्‌का कर्तव्य है कि इसे ठीकसे पहचानकर ही कोई कर्म करें।

लोकमान्यके मतानुसार इस प्रकार जब अर्जुन कर्तव्य कर्मके बारेमें जिज्ञासुके रूपमें प्रस्तुत हो जाता है, तब भगवान् उसे कर्मयोगशास्त्रका रहस्य बतलाते हैं। वे कहते हैं कि अर्जुन, आसक्ति त्यागकर कर्मकी सिद्धि हो या न हो, दोनोंको समान मान योगस्थ होकर कर्म कर।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ (२.४८)

समबुद्धिसे युक्त कर्मकी सार्थकलोकमें प्रशंसाकर आगे भगवान् कहते हैं :

तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् । (२.५० उत्त०)

भगवान्‌का स्पष्ट मत है कि कर्म-अकर्मकी इन असमाधेय चिन्ताओंमें न पड़कर कर्मको छोड़ देना तो कथमपि उचित नहीं। विचारवान् पुरुषको इसमें ऐसी युक्ति ढूंढ़ निकालनी चाहिए जिससे सांसारिक कर्मोंका लोप तो न हो और न कर्माचरण करनेवाला उसके बन्धनमें ही बँध जाय।

अब अन्ततः संक्षेपमें कर्मयोगशास्त्र शब्दके अर्थपर भी लोकमान्यके अभिमतानुसार ध्यान दें। इसमें तीन पद हैं : कर्म+योग+शास्त्र। जहांतक शास्त्रका प्रश्न है, निर्विवाद है कि शासनात् शास्त्रम्। अर्थात् अनुशासन करनेके कारण ही वह शास्त्र है। अब 'कर्म' शब्दके अर्थपर ध्यान दें।

यहाँ 'कर्म' मूलतः 'कृ' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है। करना, व्यापार या हलचल। गीताकारको यही व्यापक अर्थ अभिप्रेत है। कर्मको केवल, श्रौत-स्मार्त कर्मके बाड़ेमें

बांध रखनेको वे तैयार नहीं। अर्थात् कायिक, वाचिक, मानसिक, या सात्त्विक, राजस, तामस, सभी प्रकारके कर्म यहाँ कर्म-पदसे विवक्षित हैं।

इसी तरह 'योग' शब्दका पातञ्जल-दर्शनोक्त सीमित 'चित्तवृत्तिनिरोध' रूप अर्थ गीताकारको ग्राह्य नहीं। यह 'योग' शब्द 'युज' धातुसे बना है, जिसका अर्थ है : जोड़, मेल-मिलाप, एकता, एकत्र अवस्थिति। ऐसी स्थितिकी प्राप्तिकी युक्ति; चतुराई या मन्त्र-शैलीभरा उपाय यहाँ 'योग' पदसे विवक्षित है। भगवान् कहते हैं : **योगः कर्मसु कौशलम्।** कर्ममें कुशलता योग है। अर्थात् विशेष प्रकारकी कुशलता, चतुराई या युक्ति है, जिससे 'कर्म' सर्पके विषके दांत टूट जायँ—निष्काम हो समत्वबुद्धिसे कर्मानुष्ठान। इसीलिए भगवान् स्पष्ट कहते हैं कि **समबुद्धिर्विशिष्यते।** उसकी बड़ाई कुछ निराली ही है।

योगः कर्मसु कौशलम् की व्याख्यामें भाष्यकार भगवत्पाद शङ्कराचार्य भी कहते हैं कि योग मानो कर्ममें स्वभावसिद्ध रहनेवाले बन्धनको तोड़नेकी युक्ति। इसी तरह भागवतधर्मके विवेचनमें 'नारायणीयोपाख्यान' में भी कहा गया है कि इस धर्मके लिए कर्मोंका त्याग किये बिना ही कर्मयोगी **सुप्रयुक्तेन कर्मणा**—अर्थात् युक्तिपूर्वक कर्म कर परमेश्वरकी प्राप्ति कर लेते हैं। महाभारत भी कर्मयोग और कर्मसंन्यासको एक ही तुलापर बैठाता है।

प्रवृत्तिलक्षणो योगो ज्ञानं संन्यासलक्षणम्। (महाभा० आश्व० ४३.२५)

इस तरह गीतामें योगका प्रधान अर्थ 'कर्मयोग' और 'योगी' का प्रधान अर्थ 'कर्मयोगी' होता है तो यह अलग बतानेकी आवश्यकता नहीं कि गीताका अन्तिम तात्पर्य या रहस्य क्या हो सकता है?

●

जब तुम अपनेको अरक्षित समझते हो, तभी तो भयभीत होते हो। क्या तुम्हारा कोई रक्षक नहीं है? क्या तुम्हारे सिरपर किसीका हाथ नहीं है? तब तो तुम वास्तवमें दुःखी हो। आओ, भगवान्‌के करकमलों-की छत्रछायामें निर्भय हो जाओ! यहाँ शान्ति और सुखका अक्षय सदा-वर्त्त चलता रहता है।

एक पाश्चात्य महिलाकी जबानी

भारत क्या है ?

श्रीमती विमलादेवी शर्मा

★

भारतके लिए बहुत पहले महाराज मनुने लिख रखा है कि इसी देशसे संसारमें संस्कृति एवं सभ्यताका प्रसार हुआ है और पृथ्वीके समस्त मानवोंको चरित्र की शिक्षा भी इसी भारत देशसे लेनी चाहिए ।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

पराधीन भारतमें भी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तके स्वर 'भारत-भारती' में गूँज उठे हैं ।

हाँ वृद्ध भारतवर्ष ही संसारका सिरमौर है
ऐसा पुरातन देश कोई विश्वमें क्या और है ?
दे दीं जिन्होंने अस्थियाँ परमार्थ-हित जानी नहीं ।
वे शिवि दधीचि हरिश्चन्द्र-से होते रहे दानी यहीं ।।

सर सैयद इकबालने भी कहा है ।

सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ।
हम बुलबुले हैं उसकी वो गुलसिताँ हमारा ।।

किन्तु अत्यन्त खेदके साथ कहना पड़ता है कि स्वतन्त्र भारतकी बुलबुलोंको अपने गुलसिताँका ही पता न रहा । हमारे राजनेता शिक्षाविद्, युवक छात्र और प्रजा भी यह न जान पायी कि वास्तवमें भारत क्या है ?

स्वतन्त्रता मिलते ही जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें हमारी दृष्टि विदेशाभिमुख होती चली गयी । भारतकी सभ्यता, संस्कृति, साहित्य धर्म-दर्शन, आदर्श एवं सभी विषय भारतकी भाषा संस्कृतमें संनिहित थे और उसीसे हम अनभिज्ञ रहे, 'कट ऑफ' रहें । संस्कृत तो बहुत बड़ी बात हो गयी, हिन्दीको भी राष्ट्रभाषाके रूपमें ग्रहण करनेमें हमारे गुलाम-मानसको हेयताका अनुभव होने लगा । अंग्रेजी द्वारा अंग्रेजी-साहित्य पढ़नेवाली अधकचरी नयी पीढ़ी पलती-बढ़ती रही । परिणामतः हम अपने भारतके बारेमें अनजान रह गये और जिज्ञासु विदेशी हमसे अधिक जान गये । कितनी लज्जाका विषय है कि अपने देशके बारेमें भी हम विदेशियोंसे जानें ।

इसी सन्दर्भमें मैं उन्हीं वयोवृद्ध श्री लक्ष्मणदत्तजी द्वारा सुनाया गया एक संस्मरण 'श्रीकृष्ण-सन्देश'के पाठकोंके सामने रख रही हूँ, क्योंकि उन्हें फरवरी-अङ्कमें प्रकाशित 'गीता पढ़ो' लेख पसन्द आया है। हमारे पाठक ही यदि इसपर पूर्णतया विचार कर अपनी सन्ततिको भारतका परिचय करा सकें तो लेख सार्थक हो जायगा।

अमेरिकामें बच्चोंके स्कूल कैसे चलते हैं, कौन चलाते हैं, क्या व्यवस्था होती है, कैसे 'मैनेजमेण्ट' (व्यवस्था) होता है, व्यवस्था कमेटी करती है या सरकार ? इसकी जानकारीके लिए ज्वाईण्ट डाइरेक्टर जनरल ऑफ एज्युकेशन (संयुक्त शिक्षानिर्देशक) डॉ० विश्वास ४-५ वर्ष पूर्व लास इंजिल गये थे। वहाँ एक सुबह वे 'रामकृष्ण-मिशन चर्च' के सत्संगमें भी गये और देखा कि ढाई-तीन सौ आदमी किस प्रकार वहाँ कीर्तन-प्रार्थनामें रत हैं। प्रार्थनाके बाद उन लोगोंकी दृष्टि पिछली बेंचपर बैठे एक अनजाने-अनपहचाने भारतीय डॉ० विश्वास पर मुड़ी। उनके रंग-रूपसे यह समझनेमें देर न लगी कि ये कोई भारतीय हैं, फिर भी अपनी जिज्ञासा-शान्तिके लिए उन लोगोंने पूछा : 'ह्वेयर डु यू कम फ्रॉम ?' ('आप कहाँसे पधार रहे हैं ?') डॉ० विश्वासने कहा : 'आई कम फ्रॉम ऑफ इण्डिया' ('हम भारतसे आ रहे हैं।') 'ओह ! यू कम फ्रॉम ऑफ इण्डिया दि लैण्ड ऑफ रामकृष्ण परमहंस एण्ड स्वामी विवेकानन्द !' ('आप उस भारतसे आ रहे हैं जो रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्दकी निवासभूमि है !') सारे प्रसन्नतासे झूमने लगे, मानो उनके हाथ कोई निधि लग गयी हो।

उन सबने मिलकर डॉ० विश्वाससे प्रार्थना की कि आप हमें भारत और वहाँकी फिलासफी (दर्शन) के बारेमें कुछ विस्तारसे बताइये। आप तो वहींके रहनेवाले हैं और वहींसे आ रहे हैं। डॉ० विश्वासने कहा : 'मेरी इस समय कुछ तैयारी नहीं है कि मैं आपको कुछ बता सकूँ।' वे इस उत्तरसे हैरान हो कहने लगे कि 'आप क्या कह रहे हैं, आप भारतीय हैं और भारतके बारेमें जानने-बतलानेकी आपकी तैयारी नहीं है।' उनके बहुत आग्रहपर डॉ० विश्वासने कहा : 'कल मैं आपसे कुछ बातें करूँगा।'

वे बाहर निकल ही रहे थे कि एक बहुत धनिक घरानेकी ८० वर्षीया वृद्धाने उनसे कहा : 'मिस्टर विश्वास ! आप मेरे साथ मेरे घर चलें, बाहर मेरी गाड़ी खड़ी है। हम साथ-साथ नास्ता करेंगे।' वृद्धाके आतिथ्यपर भी इन्होंने आनाकानी करते हुए कहा : 'अभी मेरे पास समय नहीं है, फिर कभी चलूँगा।' फिर भी उस स्त्रीने नहीं मानी। वह अपनी गाड़ीमें उन्हें अपने घर लिवा ले गयी जो लगभग उस रामकृष्ण-चर्चसे डेढ़-दो मील की दूरीपर ही था। वहाँ उसने नौकरको चायका आर्डर देकर इनसे कहा : 'आपको अपना भारत जानने-बतानेके लिए तैयारीकी जरूरत है न ? मैं आपको बताती हूँ कि आपका भारत क्या है ?'

उसने कहा : "आजसे बीस वर्ष पूर्व मेरी आयु ५७ वर्षकी थी। मुझपर पैरालिसिस (लकवा) का अटैक (आक्रमण) हो गया और शरीर जड़ पड़ गया। बहुत इलाज कराये बड़े-बड़े डॉक्टरों के, पर कुछ भी लाभ न हो सका। इस तरह २-३ वर्ष पड़ी रही। एक दिन अपने घासके लॉनमें सर्दीमें धूप सेकने लेटी थी कि मुझे सामनेसे 'सफटिन कलर'

(जोगिया रंग)में एक आदमी दीखा। मेरेलिए वह रंग बड़ा आकर्षक और आश्चर्यजनक था, क्योंकि उससे पहले मैंने वैसा रंग देखा नहीं था। मैंने अपने नौकरको दौड़ाकर उसे अपने पास बुला भेजा। वे आ गये तो मैंने पूछा : 'आप कौन हैं, क्या नाम है आपका क्या काम है ?' उन्होंने कहा : 'मेरा नाम योगानन्द है, संन्यासी हूँ, संसारकी—सबकी भलाई करना ही संन्यासीका काम होता है।' मैंने कहा : 'सबमें तो मैं भी शामिल हूँ।' उन्होंने कहा : 'अवश्य।' 'तो आप मेरी भलाईके लिए क्या कर सकते हैं, मैं इतने वर्षोंसे अपाहिज पड़ी हूँ।' उन्होंने कहा : 'मैं आपको एक मन्त्र देता हूँ। यदि आप इसे पक्की निष्ठा और पूरे विश्वासके साथ तन्मयतासे जप सकीं तो मुझे पूरा भरोसा है, आपको अवश्य लाभ होगा। उन्होंने मुझे—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

यह मन्त्र देते हुए कहा : 'आप इसे जपना प्रारम्भ कर दें, बीच-बीचमें मैं आपसे मिलता रहूँगा।'

मैंने पूरी निष्ठासे जाप शुरू कर दिया और वे भी मुझसे मिलने आते रहे। मैंने देखा, धीरे-धीरे मुझमें शक्तिका संचार प्रारम्भ हो चला। एक वर्ष बाद मेरे हाथ-पैर हिलने-डुलने लगे और तीन वर्ष बाद मैं इस योग्य हो गयी कि अपने घरसे पैदल इस रामकृष्ण-मिशन-तक जाती हूँ, वापसीके लिए गाड़ी मंगाती हूँ। अब मेरी आयु ८० वर्षकी है। १७ साल हो गये मेरे इस अभ्यासको। यह है आपका भारत !'

उस वृद्धाने आगे कहा : 'महाशय, अब अन्दर आइये।' वह उन्हें अपने कमरेमें ले गयी। कमरेमें केवल तीन चित्र टँगे थे : १. रामकृष्ण परमहंस, २. स्वामी विवेकानन्द और ३. महात्मा गांधी। उसने कहा : "यह है आपका भारत !"

फिर वहाँ ले गयी, जहाँ वह पूजा प्रार्थना करती थी। वहाँ उसकी बाइबिल, रामायण और गीता रखी थी। उसने कहा : "मैं रोज गीता पढ़ती हूँ, वह गीता जिसके लिए, जर्मनीके एक फिलॉसफर (दार्शनिक) 'वान हम्बोल्ट' ने लिखा है : 'गीता इज द डीपेस्ट एण्ड लाफ्टीयस्ट बुक ऑफ मैन काइण्ड अर्थात् गीता मनुष्यजातिकी सबसे गहरी और सबसे ऊँची पुस्तक है। इङ्गलैण्डके दार्शनिक डॉ० हिल ने कहा है : 'गीता इज मोस्ट अनकम्प्रोमाइजिंग बुक ऑफ पीस।' अर्थात् गीता शान्तिके बारेमें कतई समझौता न करनेवाली पूर्ण पुस्तक है। वह कहीं हिंसा पसन्द नहीं करती।

इमर्सनको कार्लाइलने गीता भेंट की थी। ये है आपका भारत ! आप भारतीय भारतको नहीं जानते, उसे जाननेके लिए तैयारी और समय चाहिए !'

डॉ० विश्वासने प्रसन्नताभरे हृदयसे उस वृद्धासे विदा ली। यहाँ भारतमें आनेपर जब उनसे इन श्री लक्ष्मणदत्तजीने पूछा कि 'जो आपको वहाँ बहुत अच्छा लगा हो, उसके बारेमे बताइये', तो उन्होंने यह घटना सुना दी।

●

विश्व धर्म-शास्त्रोंमें 'अहिंसा' का स्थान

श्री जयदयालजी डालमिया

★

हिन्दू-आर्योंके धर्मग्रंथोंमें एवं अन्य धर्मोंमें भी 'अहिंसा' धर्मको बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है, जो निम्नलिखित उद्धरणोंसे स्पष्ट है :

१. **अहिंसा परमो धर्मः** : अहिंसा परम धर्म है ।—(म० भा० वनपर्व २०७.७४)

अहिंसा सर्वभूतेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता : सब प्राणियोंके लिए सब धर्मोंमें अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म है ।—(म. भा० शान्ति० २६५.६)

अहिंसा सकलो धर्मो हिंसाऽधर्मस्तथाऽहितः : अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्म है, हिंसा अधर्म और अहितकारी है ।—(म० भा० शान्ति० २७२.२०)

२. **मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि** : किसी भी प्राणीकी हिंसा न करो ।

३. **तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः** : सर्वथा—सम्पूर्ण रूपसे, सर्वदा—सब कालमें, किसी भी भूत यानी प्राणी से द्रोह न करना अहिंसा है ।

—(पातञ्जलयोगदर्शन २.३०)

४. **अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते** : प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे मनुष्य मोक्ष पानेके योग्य होता है ।—(मनु० ६.६०)

५. **अहिंसया तत्पदम्** : अहिंसासे मनुष्य परम पदको प्राप्त होता है ।

—(मनु० ६.७५)

६. **यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् ।**
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे ।
एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपि धीयते ॥

जैसे हाथीके पैरमें पैरसे चलनेवाले सभी लोगोंके पैर समा जाते हैं, वैसे ही अहिंसाके अन्तर्गत सब धर्म आ जाते हैं ।—(म० भा० शान्ति०)

७. **धर्माणां च यथाहिंसाभयदानं वरेण्यकम्** : जैसे सब धर्मोंमें अहिंसाधर्म सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही दानोंमें अभय-दान श्रेष्ठ है ।—(आदिपुराण १.१९)

८. **प्रविशन्ति यथा नद्यः समुद्रमृजुवक्रगाः ।**
सर्वेऽधर्माश्च हिंसायां प्रविशन्ति तथा दृढम् ॥

जैसे सीधी-वक्र गतिवालियोंकी नदियाँ समुद्रमें प्रवेश करती हैं, वैसे ही सब अधर्म हिंसामें प्रवेश करते हैं, अर्थात् हिंसा सबसे बड़ा अधर्म है।—(पद्म० उत्तरखण्ड २४३.६)

९. सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा : जिस सत्यमें हिंसा होती है, वह सत्य सत्य नहीं है।—(देवीभागवत ३.११.३९)

१०. श्रूयते द्विविधं शौचं यच्छिष्टैः पर्युपासितम्।
बाह्यं निर्लेपनिर्गन्धमनाः शौचमहिंसनम्॥
अद्भिः शुद्ध्यन्ति गात्राणि बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।
अहिंसया च भूतात्मा मनः सत्येन शुद्ध्यति॥

—(बौधायन धर्मसूत्र ३.१०.२३-२४)

दो प्रकारका शौच होता है : १. बाह्य शौच और अन्तः शौच। बाह्य शौच निर्लेपन और निर्गन्धसे होता है और अन्तःशौच होता है अहिंसासे। शरीरकी जलसे, बुद्धिकी ज्ञानसे, आत्माकी अहिंसासे और मनकी सत्यसे शुद्धि होती है।

११. बौधायन धर्मसूत्रमें तपोंकी गणनामें 'अहिंसा' को प्रथम स्थान दिया है :
अहिंसा सत्यमस्तैनं सवनेषूदकोपस्पर्शनं गुरुशुश्रूषा
ब्रह्मचर्यमध शयनमेकवस्त्राऽनाशक इति तपांसि।—(३.१०.१४)

१२. पातंजल योगसूत्रमें पाँच यमोंमें अहिंसाको प्रथम स्थान दिया है :
अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।—(साधनापाद, ६०)

१३. श्रीमद्भगवद्गीतामें दैवीसम्पद् गुणोंमें अहिंसाको सत्यसे भी पहले स्थान दिया है।
अहिंसा सत्यमक्रोधः······ ।—(गीता १६.२)

१४. परम धर्म श्रुतिविदित अहिंसा।—(रामचरित-मानस)

१५. श्री विष्णुशर्मा-विरचित पंचतन्त्रमें जहाँ कहानियोंके रूपमें व्यावहारिक ज्ञानकी शिक्षा दी गयी है, अहिंसाको ही प्रधान धर्म बताकर उसकी प्रशंसा की गयी है। काकोलूकीय (तृतीय तन्त्र) में वर्णन है :

हिंसकान्यपि भूतानि यो हिंसति स निर्घृणः।
स याति नरकं घोरं किं पुनर्यः शुभानि च॥

अर्थात् जो (बिना कारण) हिंसक प्राणियोंको भी मारता है, वह निर्दयी होता है और घोर नरकमें जाता है। फिर जो निर्दोष, अच्छे प्राणियोंको मारता है, उसके लिए तो कहना ही क्या है?

ईसाई-धर्म और पारसी-धर्ममें भी अहिंसा-धर्मसम्बन्धी वाक्य पाये जाते हैं। उनमें से कुछ महत्त्वके ये दर्शनीय हैं :

1. For 'meat' destroy not the work of God.–(Romans 15.20)
मांसके लिए भगवान्की कृतिको नष्ट न करो।

2. It is good neither to eat flesh nor to drink wine, nor anything whereby thy brother stumbleth, or is offended, or is made weak. —(Romans 15.21)

न मांस खाना अच्छा है, न शराब पीना; न कोई ऐसा काम करना अच्छा है जिससे हमारा भाई (साथी) लड़खड़ाने लगे, व्यथित हो या कमजोर हो जाय।

3. Sacrifice and offering Thou did not desire, Mine ears have you opened. Burnt offering and sin offering hast Thou not required. —(Psalms 40 6)

हे भगवान् ! तुमने जीवोंका बलिदान नहीं माँगा, अग्निमें उनकी आहुति नहीं चाही ! ऐसे पाप तुमको अभीष्ट नहीं हैं। तुमने मेरे कान खोल दिये।

4. I will take no bullock out of Thy house, nor he goats out of Thy folds. —(Psalms 50.9)

मैं तेरी सृष्टिसे न बैलको हटाऊँगा, न बकरेको।

5. For every beast of the forest is Mine, and the cattle upon the thousand hills. —(Psalms 50.10)

जंगलमें रहनेवाले जीव और हजारों पहाड़ियोंपर रहनेवाले पशु मेरे हैं।

6. I know all the fowls of the mountains, and the wild beasts of the fields are mine. —(Psalms 50.11)

पहाड़ोंपर रहनेवाले कुक्कुट, मैदानमें रहनेवाले जंगली जीव सभी मेरे हैं।

7. If I were hungry, I would not tell thee, for the world is mine, and the fullness there. —(Psalms 50.12)

मैं भूखा होऊँगा तो तुमसे नहीं कहूँगा। सभी सृष्टि मेरी है और भरी-पूरी है (ईश्वरके नामपर जीवहिंसा करनेवालोंके प्रति वे कह रहे हैं कि मैंने अपनी भूख तुम्हारे सामने प्रकट नहीं की। सभी सृष्टि मेरी है और मेरी भूख शान्त करनेके लिए मुझे तुम्हारी हिंसा की जरूरत नहीं है)।

8. Will I eat the flesh of bulls, or drink the blood of goats ? —(Psalms 50.13)

क्या मैं बैलोंका मांस खाऊँगा और बकरोंका खून पीऊँगा ?

9. I will have mercy and not sacrifice.—(Mathews 9.13)

मैं हिंसा नहीं, दया चाहता हूँ।

10. He that killeth an ox[1] is as if he slew a man, He that sacrificeth a lamb, as if he cut off a dog's neck —(Isaiah 66.3)

---

१. 'Ox' का अर्थ अंग्रेजी-कोशके अनुसार गोवंशके नर और मादा दोनों हैं।

जिसने गोवंशकी हत्या की, उसने मानो मनुष्यकी हत्या की। जिसने भेड़के बच्चेकी हत्या की, उसने मानो कुत्तेकी गरदन काटी है।

पारसी (जरथुस्त्र) धर्ममें भी अहिंसाको बहुत महत्त्व दिया है और मांसको बहुत अपवित्र माना है। उनके बम्बईके वाडिया-मन्दिरके पुरोहित (धर्मगुरु) दस्तूर खुरशेदजीने अपने पत्र दिनांक ७-२-१९६९ में बताया है :

1. Our religion has the attribute : 'Not advocating compulsion and violence' —(Naida-Snaithishem)

हमारे धर्मकी विशेषता है। दबाव और हिंसाका समर्थन न करना।

2. Any cruelty to animals is prohibited; and protection or kindness is advocated.

जीवोंके प्रति क्रूरता वर्जित है एवं (जीवोंकी) रक्षा या (उनके प्रति) दयाका समर्थन है।

3. It is pointed out that at the final 'judgment' (Resurrection) man's food should consist of vegetarian products; and none would kill living creatures for food.

यह बताया गया है कि (मृत्युसे उत्थानके समय) अन्तिम निर्णयमें मानवके भोजनमें वनस्पति-वस्तुएँ होंगी और कोई भी खानेके लिए जीव-हिंसा नहीं करेगा।

4. The sacred humans of Zarathustra emphasise our homage (nemo) to the animal kingdom. All life is sacred.

जरथुस्त्रके सूक्त हमारे लिए जीवोंके प्रति आदर-श्रद्धापर जोर देते हैं। सभीका जीवन पवित्र है।

5. Animal sacrifices are forbidden and none of our rituals ever offer meat, Nay. it has to be far away from sacred precincts.

जीव-बलिका निषेध है, हमारे किसी भी संस्कार या प्रथामें मांस अर्पण नहीं होता। पवित्र स्थानोंसे इसे (मांस को) बहुत दूर रखा जाता है।

यद्यपि पारसी समाजके बहुतसे लोग धर्म-आज्ञाके विपरीत मांसाहारी हैं, किन्तु उनके धर्मगुरु दस्तूर श्री खुरशेदजी स्वयं पूर्णतया शाकाहारी हैं।

कितने आश्चर्यकी बात है कि ईसाई-धर्मावलम्बी अपने धर्मग्रन्थोंके ऐसे विधान होनेपर भी कि 'गोवंशकी हत्या मानवहत्याके बराबर है', सबसे अधिक गोहिंसक और गोमांस-भक्षक हैं एवं स्वार्थवश दूसरोंको भी इसके लिए प्रोत्साहन देते हैं!

●

वही श्याम वही श्यामा : वही काला वही काली

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट

★

आयान घोष था कालीका उपासक ।
वह करता था कालीकी उपासना ।
उसकी पत्नी राधा थी कृष्णकी उपासिका ।
वह करती थी कृष्णकी उपासना ।
आयानकी उपासना चलती खुले-खुले ।
राधाकी उपासना चलती छिपे-छिपे, चोरी-चोरी ।
कुटिलोंकी कहीं कमी तो है नहीं ।
राधाकी ननद थी कुटिला ।

एक दिन उसने आयानके पास जाकर जड़ ही तो दी राधाकी शिकायत : 'भैया, तुम्हें पता नहीं । भाभी छिपे-छिपे कृष्णकी पूजा करती रहती है ।'

'सच ?'

'हाँ भैया । न मानो तो अभी चलकर देख लो । पर, चलना जरा हौले-हौले । पदचाप कहीं भाभी सुन न ले ।'

× × ×

आयान घोष जा पहुँचते हैं राधाके पूजा-कक्षमें ।
पर यह क्या ?
यहाँ तो सारा दृश्य ही बदला हुआ है !
दाशरथि राय गा रहे हैं :

कुंज कानने काली त्यजे बांशी वनमाली, करे असि धरे श्रीराधाकान्त !
श्याम - श्यामा - भेद केन करे जीव भ्रान्त ?

वंशीवाला श्याम गायब ।
उसकी वंशी भी गायब ।
उसकी जगह विराजमान है—काली ।
कुंज - काननमें काली प्रतिष्ठित है ।
राधाकान्तके हाथमें वंशीके बदले हैं तलवार ! खड्ग ।

पीताम्बरका भी पता नहीं।

एक अद्भुत रूप अपरूप, नवीन सौन्दर्य उभर रहा है।

दिगम्बरा विवसना काली कराली—लाल-लाल जीभ काढ़े, विकट दन्तोंवाली काली, जिसके मस्तकपर है चन्द्रमा और मुखपर है भीषण अट्टहास :

पीताम्बर परिहरि हरि हलेन दिगम्बरी मरि-मरि हेरि कि रूपेर अन्त !
कि वा काल शशि लोलजिह्वा एलोकेशी भाले शशि अट्टहासि विकट दन्त !!

धूप-दीप, गन्ध-तुलसीके स्थानपर है रक्त जवा। कहीं पार है चिन्तामणि श्यामके अनन्त भावोंका ?

जे गोविन्द पदद्वये सुगन्धि तुलसी दिये सुरनर साधे सारा दिनान्त।
दियेछे चरणे राँगा जवा रंगिनीराय करे सेवा के पावे श्याम चिन्तामणि भावेर अन्त ।।

कैसा मूरख है जीव जो श्याम और श्यामामें भेद करता है ?

× × ×

नटवर तो ठहरा बहुरुपिया। जब देखो, स्वांग बदल लेता है। रामप्रसाद गाते हैं :

कालवरण व्रजेर जीवन व्रजांगनार मन उदासी।
हलेन वनमाली कृष्ण-काली वांशी त्यजे करे असि।।

कृष्णको काली बनते क्या देर लगती है !

व्रजांगनाएँ हैरान : 'अभी-अभी तो मुरली थी इसके हाथमें। वनमालीके हाथमें कालीकी यह करवाल कहाँसे आ गयी ?'

× × ×

उधर तुलसीदास चुनौती फेंक रहे हैं :

कहा कहौं छबि आजुकी भले बनेहौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बाण लेउ हाथ।।

और यह लीजिये—वंशी लापता, धनुष-बाण हाजिर। कृष्ण राम बन जाते हैं !

× × ×

रामप्रसादको काली कलकत्तेवाली वृन्दावनमें कृष्णरूपमें दीख पड़ती है। जो श्याम सो श्यामा ! जो काली सो काला :

काली हलि ना रासबिहारी नटवर वेशो वृन्दावने।
निज तनु आधा गुणवती राधा आपनि पुरुष आपनि नारी ।।
छिल विसवन कटि एवे पीतधटि एलो चूल चूड़ा वंशीधारी ।।

वही पुरुष, वही प्रकृति। वही कृष्ण, वही राधा।

एक ही रूपके दो स्वरूप !

इधर दिगम्बर। उधर पीताम्बर।

माता यशोदाके आगे मनमोहन कृष्ण।

करालवदना कालीका वहाँ कहीं पता ही नहीं !

यशोदा नाचत गो वले नीलमणि, से वेश लुकाले कोथा करालवदनी।

× × ×

कमलाकान्तकी अनुभूति भी तो रामप्रसादसे मिलती जुलती है। उनकी काली है "परम-कारण"। मनको समझाते हैं—देख, तू चक्करमें मत आ जाना। यह महिषासुर-मर्दिनी काली ही कभी-कभी मर्द बन जाती है और मनमोहन बनकर गोपियोंका मन मोहने लगती है।

जान ना कि मन, परम कारण, काली केवल मेये नय !
मेघेरवरण करिये धारण, कखन कखन पुरुष हय॥
हये एलोकेशी, करे लये असि, दनुज तनये करे सभय।
कभू व्रजपुरे आसि, बाजाइये वांशी, व्रजांगनार मन हरियेलय॥

× × ×

रामलालदास दत्त तो साफ कहते हैं : काला आमार मा काली !

अभेद भाव रे मन, काला आर काली।
मोहन मुरलीधारी, चतुर्भुजा मुण्डमाली॥

काली कि काला वलिले काले छोंय ना कोन काले।
कालेर कर्त्री काली सेइ काला आमार मा काली॥

कोई अन्तर नहीं 'काला' और 'काली' में।

वही है : मोहन मुरलीधारी।

वही है : चतुर्भुजा मुण्डमाली।

वही है काला, वही है काली।

कालका निर्माण उसीके हाथों हुआ है।

काल उसके नामसे डुगडुग काँपता है।

'काला' ही है हमारी माँ 'काली' !

× × ×

काली और कृष्ण, शिव और राम—रामप्रसादकी दृष्टिमें एक हैं। वे सभीमें माँ कालीके दर्शन करते हैं। शिंगा हो या वंशी, धनुष हो या खड्ग—सब माँके शस्त्र :

ए ये काली कृष्ण शिव राम—सकल आमार एलोकेशी।
शिवरूपे धर शिंगा, कृष्णरूपे बाजाओ बांशी।
ओ मा रामरूपे धर धनु, कालीरूपे करे असि !!

× × ×

गोविन्द चौधरी यह मानकर चलते हैं कि माँ है ओंकाररूपिणी। जब चाहती है तब अपना रूप बदल लेती है :

आज येमन गोविन्देर काछे दुर्गारूपे एसेछे।
काल देखबे राधारूपे श्यामेर वामे बसेछे॥

आज तू गोविन्दके निकट दुर्गा रूपमें पधारी है।
कल तू श्यामके वामांगमें राधारूपमें आ बैठेगी।
जब तेरी जो मर्जी हो जाय !

× × ×

रामदुलाल नन्दोको अपने मनसे बड़ी शिकायत है—बड़ा पाजी हो गया है यह मन। अद्वैतमें द्वैतकी कल्पना करता है :

एक ब्रह्म द्विधा भेवे मन आमार हयेछे पाँजि !

अरे, पागल भेदमें क्यों अटका है ? मां ही तो है सर्वत्र :

मगे बले 'फरातारा', 'गड्' बले फिरंगी यारा मा।
'खोदा' बले डाके तोमाय मोगल पाठान सैयद काजी॥
शाक्ते बले तुमि 'शक्ति', 'शिव' तुमि शैवेर उक्ति मा।
सौरी बले 'सूर्य' तुमि, वैरागी कय 'राधिकाजी'॥

फादर और गॉड, खुदा और अल्लाह, शक्ति और शिव, सूर्य और राधा—सब तेरे ही नाम तो हैं माँ !

दीवान रघुनाथ भी इसी स्वरमें गाते हैं :

तुमि राधा तुमि कृष्ण महामाया महाविष्णु।
तुमि गो माँ रामरूपिणी तुमि असिते॥

दुर्गाके १०८ नामोंमें एक नाम है—पुरुषाकृतिः।

क्यों ?

इसीलिए कि एक ही शक्तिके अनेक रूप हैं :

एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य भिन्ना चतुर्धा व्यवहारकाले।
पुरुषेषु विष्णुः भोगे भवानी, समरे च दुर्गा, प्रलये च काली॥

महाशक्तिका ही यह सारा विलास है। वही विष्णु है, वही भवानी, वही दुर्गा और वही काली है।

जगज्जननीके ही ये सारे स्वरूप हैं। केवल पर्दा उठाकर देखनेकी जरूरत है।

आरतीमें हम दुर्गाकी प्रशस्ति करते ही हैं न ? :

राम कृष्ण तू सीता व्रजरानी राधा।
तूँ वांछा - कल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा॥
जगजननी जय जय॥

साधकसे इसीलिए कहा गया है :

काली बल कृष्ण बल किछूतेइ क्षति नाइ।
चित्त परिष्कार रेखे एकमने डाका चाइ॥

काली कहो चाहे कृष्ण ! उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। जरूरत एक ही बातकी है। चित्त शुद्ध रखो और पुकारो एकाग्र होकर।

भला माँ कभी दूर रह सकती है—हृदयसे पुकारनेपर ?

वियोगिनीकी कजरी

अरे रामा वारिवाह-समुदाय सपदि हो, क्षीणकाय भृश रे हरी॥ (टेक)
नभ-मण्डल आवरण-विभा ले, कृष्ण-कान्ति फैलाया रामा।
अरे रामा तिमिर-शत्रु-मद-मर्दन दल हो, नष्टप्राय झट रे हरी॥ १॥

घन-घमण्ड-घन-भीषम-घोषमें, बार-बार चिल्लाता रामा।
अरे रामा प्रिय-सुधिमें प्रतिबन्ध विधाता, पल-पल बादल रे हरी॥ २॥

विकसा प्रभा-सभा अचिराभा, बारम्बार नाचती रामा।
अरे रामा जैसे वही पतिवती तरुणी, सृष्टि-वासमें रे हरी॥ ३॥

कविको सरस-स्वस्थ-कविताएँ, स्मृतिमें नहीं समाती रामा।
अरे रामा कैसे कहूँ व्यथाएँ अपनी, प्रिय-वियोग की रे हरी॥ ४॥

घन-वर्षासे पड़-पड़ जाता, आशाओंपर पानी रामा।
अरे रामा पंकिल-पंथ विलोकि प्रवासी, निकट न आता रे हरी॥ ५॥

— श्री अमरनाथ शुक्ल —

रूपकमयी 'अभिलाषा' !

भगवन् ! त्रेतायुगमें लंकाके राजा रावणका सवंश संहार करनेके लिए आपको अवतीर्ण होना पड़ा था, क्योंकि भक्तोंको एवं त्रस्तोंको त्राण दिलानेवाले एकमात्र आप हो हैं, ऐसा ऋषि-मुनियोंका विचार है। गोस्वामी तुलसीदास भी आपकी अमर-गाथा गानेमें पीछे नहीं रहे। यह शाश्वत सत्य सिद्ध है कि लंकाके विजेता आप श्रीराम हैं और उसके प्रादुर्भावपर आपको कृपा करनी ही होगी। भगवन् ! आप आश्चर्य करेंगे कि इस नयी लंकाका प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ ?

हमारा शरीर एक ब्रह्माण्डके समान है। प्रवृत्तियाँ ही लंकाकी तरह अभेद्य किला है। मनरूपी मत्त दानवने इसे सँवारा है। शरीरके पाँचों कोश उस किलेके सुनहले महल हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण इसके सेनापति-गण हैं। देहाभिमान अगाध समुद्र है जो इस लंकाके किलेको घेरे हुए है। इस समुद्रमें राग-द्वेष एवं कामनाएँ आदि जन्तु हैं। इस सागरमें आसक्ति और संकल्पोंकी बहुत ऊँची-ऊँची लहरें उठा करती हैं। इस लंकामें मोहरूपी रावण, अहंकाररूपी कुम्भकर्ण, कामरूपी मेघनाद, लोभरूपी अतिकाय, मत्सररूपी महोदर, क्रोधरूपी देवान्तक, द्वेषरूपी दुर्मुख, दम्भरूपी खर, कपटरूपी अकम्पन, दर्परूपी मनुजाद और मदरूपी शूलपाणि राक्षस हैं। उनके साथ इन्द्रियरूपी राक्षसियाँ भी क्रीड़ा करनेमें व्यस्त हैं। किन्तु भगवन् ! वहाँ जीवरूपी विभीषण बहुत त्रस्त हो रहा है। सत्संगके अभावमें चिन्ताग्रस्त होकर बत्तीस दाँतोंके बीच जीभकी तरह निवास कर रहा है।

उपर्युक्त राक्षस-समुदायका विनाश होना नितान्त आवश्यक है। ज्ञानरूपी दशरथ और भक्तिरूपी कौशल्याकी गोदमें आप शीघ्र प्रकट होइये। पिताकी आज्ञासे आपको वन भी जाना है, लेकिन आप तो जानते ही हैं कि मेरा हृदय एक वनका रूप धारण किये हुए है। वहाँ निवसित मोक्षके साधनरूपी रीछ-बानरोंके द्वारा सागरपर पुल बाँधिये। वैराग्यरूपी पवनकुमारको लंका भेजकर विषरूपी वन और महलोंको भस्मीभूत कराइये। तदुपरान्त जीवरूपी विभीषणके लिए दानवोंका वंशसहित संहार कर दासको कृतार्थ कीजिये।

—श्री भारतभूषण लाठ

देवकी : राजनन्दिनीसे राजबन्दिनी क्यों और कैसे ?

डॉ० कृष्ण मांगलीश

(डॉ० कृष्ण द्वारा लिखित उपन्यासके बीचसे एक अध्याय)

★

हेमन्त ऋतुका उत्तरार्ध। शुक्लपक्ष, मधुवनके पूर्वाचलमें अरुणोदय होनेको था। किन्तु नीलकमल-सी यमुनाका आंचल राजनगरी मथुरासे बिखरती आलोक-किरणोंसे उद्भासित हो रहा था। सर्वत्र छिटक पड़ती आलोक-किरणोंके बीच वायुमण्डलमें कभी वाद्य-स्वर स्पन्दित हो उठता, तो कभी लोकगीतोंकी मधुर-लहरी तरंगित होने लगती। मधुवनके हर पथसे आती गीत-ध्वनि राजनगरीके गोपुरपर आ तनिक थम जाती और फिर नगरीमें प्रवेशकर वाद्य स्वरोंमें विलीन हो जाती थी। समस्त राजनगरीको अभिनन्दन-द्वारों, कौशेय पटों, पुष्प एवं दीप-मालाओंसे सजी देख गीत गाती गोपांगनाएँ तथा उनके साथ आये गोपजन मौन हो चकित-से, हर्षित-से हो उठते।

मांगलिक बन्दनवारों तथा दीप एवं पुष्पमालाओंसे सजे राज-भवनोंके शिखर-मण्डपोंमें राजकिशोरियों और वधुओंका हास-परिहास सफेदी बिखेर रहा था, तो तोरण और अभिनन्दन-द्वारोंको वीणा-मृदंगके स्वर गुंजित कर देते थे। गृह-अलिन्दोंपर पुरवासिनोंके मधुर गीतोंका स्वर स्पन्दित हो रहा था, तो गृह-वाटिकाएँ बाल-गोपालोंके हर्षोल्लाससे निनादित हो रही थीं। पुरजन राजपथके दोनों ओर खड़े हो परस्पर चर्चामें मग्न थे, तो गोप एवं कृषकजन हर्षित-से, भाव विभोर-से राजसदनकी दिशामें बढ़नेका प्रयत्न करते थे।

तभी राजपथपर बढ़ते जनप्रवाहको सुव्यवस्थित करनेके लिए अश्वारूढ़ प्रहरी आते दीख पड़े। आकाश-मण्डलमें ऊषाकी कुमकुममयी आभा भी छिटक पड़ने लगी।

इन्हीं क्षणोंमें एक भवन-शिखरपर बैठी कपोती अपने प्रियतमके पास जा बोली : 'प्रिय, मधुपुरीमें आज इतना कोलाहल कैसे ?' राज-सदनकी ओरसे अपनी दृष्टि मोड़ कपोतने प्रियतमाकी ओर निहारा, जैसे वह कह उठा : 'क्या तुम नहीं जानती शुभे ?'

'ऊहूँ'—कहती कपोती ज्यों ही प्रियतमसे सटकर खड़ी हो कुछ जाननेको आतुर हुई, त्यों ही राज-प्रांगणसे शंख और तुर्यका नाद प्रसारित हो उठा। दूसरे ही क्षण कपोत और कपोतीसहित सभीके नेत्र राजसदनको निहारने लगे।

सभीके कौतूहल और हर्षके बीच राजप्रांगणसे चार श्वेतगज आते दीख पड़े। कुछ ही क्षणोंमें स्वर्णखचित अम्बरोंसे ढंके उन गजोंपर आसीन वाद्य-वादक आगे आये। वीणा,

मृदंग, तुरही आदिसे स्पन्दित विदा-गीतोंका मधुरस्वर सुन बाल-गोपाल किलकारियाँ भरने लगे, नवकिशोरियाँ प्रस्फुरित-सी हो उठीं। वधुओंका मन मधुर तरंगोंसे सरोवार हो गया। वृद्धाओंके नयन सजल हो गये। फिर गृह-वाटिकाओं और मण्डपोंमें गीतोंकी मधुर स्वर-लहरी मुखरित हो उठी!

धीरे-धीरे श्वेतगजोंके पीछे आते अश्वारुढ़ राजसैनिक आगे बढ़ आये। अश्वारोही सैनिकों और सेना-अधिकारियोंका समूह मन्थरगतिसे आगे बढ़ा।

उन राजसैनिकोंके पीछे दीख पड़ा एक विशाल भव्य रथ! पुष्प एवं मणिमालाओंसे सुसज्जित तथा रंग-बिरंगे कौशेय पटोंसे आच्छादित उस विशाल रथको खींच रहे थे चार गान्धारी अश्व और उन अश्वोंकी कौशेय रास सँभाले हुए थे एक युवा-राजपुरुष। रथके सारथीपदपर गौरवर्ण, स्थूल-से अधर, ऊपर उठी नासिका, परस्पर सटी भौंहोंके नीचे मदभरे-से नयन और शिरपर मणिजड़ित राजमुकुटवाले राजपुरुषको देख कुछ पुरजनोंके अधर प्रस्फुरित हो उठे: 'ओहो, सम्राट् कंस!'

यादव-मण्डलके नव-नूतन सम्राट्को पुष्पकरथका संचालन करते देख प्रजामें कहीं विस्मयका भाव जाग्रत हुआ तो कहीं हर्षोद्‌गार भी। कहीं मुस्कान प्रस्फुरित हुई, तो कहीं मधुर ईर्ष्या मुखरित हो उठी: 'ओहो कितनी भाग्यशालिनी हैं राजनन्दिनी देवकी!'

राजनन्दिनी देवकीके सौभाग्यपर वधुओंके अरुण अधर प्रस्फुटित हो उठे: 'हाँ, सम्राट् तो सचमुच अत्यधिक स्नेह करते हैं अपने चाचा राजर्षि देवककी सुपुत्रीको।

तभी कुछ वृद्धाएँ कह उठीं: 'अरी, अपनी बिटिया देवकी भी तो उतनी ही स्नेह और ममताकी पात्र है!'

'मातृ-विहीना देवकीपर साम्राज्ञी अस्तिने भी तो कम ममता नहीं उड़ेली है।'

'हाँ, सन्तान-विहीना महारानी अस्तिने देवकी बिटियाके प्रति अपना वात्सल्य संजोया, तो आश्चर्य ही क्या?'

वृद्धाओं और वधुओंके परस्पर वाद-विवादमें कुछ किशोरियाँ बोल उठीं: 'राजनन्दिनी तो अपने पिता राजर्षि देवकके वात्सल्यमय संस्कार और विचारोंमें पली और ढली हैं।'

'हाँ, देवकी बिटियाने अपने पिताश्रीसे ही तो विलक्षण प्रतिभा, तार्किक बुद्धि और राजनीतिक प्रज्ञा पायी है।'

'और सुना है कि वृष्णिवंशीय वसुदेवजीने भी देवकी बिटियाको उसकी बौद्धिक प्रतिभा और मधुर सौन्दर्यके कारण ही स्वयं सम्राट्से माँगा।'

'संसारमें प्रतिभा और सौन्दर्यकी कौन पूजा नहीं करता!'—कहती हुई वधुएँ राजपथपर आगे आते हुए शोभारथकी ओर निहारने लगी थीं।

राजनन्दिनी देवकीका शोभा-रथ ज्यों ही राजप्रांगणसे आगे बढ़ा, राजपथके दोनों ओर खड़े पुरजनोंने पुष्प एवं लाजा बिखरते राजनन्दिनीका जयघोष किया।

गृह-अलिन्दों और शिखर-मण्डपोंसे भी सभीने अपनी श्रद्धा, स्नेह और आशीषके सुमन बरसाये। बाल-गोपालोंने हर्ष-ध्वनि करते हुए रथमें बैठे वर-वधूको देखनेका कौतूहल

प्रकट किया। रथके कौशेय पटोंसे छिटककर अन्दर जाती अंशु-मालिकाएँ भी नवपरिणीताके दर्शनको मचल-सी उठीं।

कुछ ही क्षणोंमें अरुण कमल-सी नवपरिणीता देवकीने रथका कौशेयपट उठा करबद्ध हो सभीका भाव-भीना अभिनन्दन स्वीकार किया। वरवेषमें सुशोभित श्यामवर्णीय वसुदेव भी सभीकी अभिनन्दनामें करबद्ध हो उठे।

उन्हीं क्षणोंमें रथ-अश्वोंकी रास थामे सम्राट् कंसकी मदभरी-सी पलकें शिखर-मण्डपोंमें खड़ी नवयौवनाओंकी ओर उठीं। युवा सम्राट्को अपनी ओर निहारते देख रूपांगनाएँ सकुचाती-सी पीछेकी ओर छिपनेका प्रयास करने लगीं। रूप-बालाओं और वधुओंको पीछेकी ओर सिमटती-सी देख सम्राट् कंसको कामुक आँखोंमें मुस्कान झलक उठती थी।

सम्राट् कंसका मद-विह्वल-सा मन पुष्प एवं लाजाकी मांगलिक बिखेर एवं राज-नन्दिनी देवकीकी जयजय-ध्वनिके बीच शोभा-रथको मन्थर गतिसे आगे बढ़ाता चला जा रहा था। नवपरिणीता देवकी भी प्रजाजनोंका असीम स्नेह, आशीष एवं मंगलकामनाओंसे पूरित पाथेय और उपहार स्वीकार करती किन्हीं मधुर और स्वर्णिम कल्पनाओंमें मग्न हो चली जा रही थीं।

विविध भावोंकी सृजनामें पुलकित-सी देवकी सहसा गगनभेदी शंखनाद और जयघोष सुन राजपथपर आगेकी ओर देख उठीं। पुष्पक-रथ मन्थरगतिसे चलता राजनगरीके विशाल प्रांगणमें पहुँच गया था।

नगर-प्रांगणसे उठते शंखनाद एवं जयघोषको सुन सम्राट् कंसकी पलकें भी उधरको उठीं और वहाँ उमड़ते जन-प्रवाहको देख अश्वोंको कौशेय रास सम्राट्की अँगुलियोंमें ही थम गयी। पुष्पक-रथ जन-प्रवाहकी श्रद्धा एवं स्नेह-सुमनोंकी वर्षाके बीच जा रुका।

मांगलिक बन्दनवारों, पुष्प-मालाओं कौशेय-पटों, अभिनन्दन-द्वारों तथा मधुर वाद्य-स्वरोंसे पूरित राजनगरीके विशाल परिसरमें प्रजाजनोंकी श्रद्धा और सम्मानका सागर ही देवकीके पुष्पक-रथकी ओर उमड़ पड़ रहा था।

जन-प्रवाहमें राजनन्दिनी देवकीके लिए ब्राह्मण एवं महन्तजन शंखनाद करते आशीष-वचन कहते थे, तो श्रेष्ठीजन राजनन्दिनीको रत्न, हीरक एवं माणिक-जटित हारोंकी भेंट करनेको आतुर थे। गोप और कृषकजन रथपर पुष्प एवं धान्यवर्षा और 'राजनन्दिनी देवकी तथा महाराजा वसुदेव का जयजयकार' करते वर-वधूके दर्शनोंके लिए अधीर थे, तो श्रमिकजन अपनी भावभीनी श्रद्धा अर्पित करते आर्द्र नयनोंसे रथकी ओर देख उठते थे।

आकाश-मण्डलसे आती स्वर्णिम किरण-मालाओंके बीच मांगलिक परिधानमें सिमटी सी, अरुणाभ कुमुदिनी-सी राजनन्दिनी प्रजाके विपुल सम्मान श्रद्धा और स्नेहको स्वीकार करती नतमस्तक हो उठी थीं।

राजनन्दिनी देवकीके प्रति प्रजाके जन-जनकी उमड़ती श्रद्धा, स्नेह और आशीष-धारा देख वसुदेवजीकी मनो-वीणा झंकृत-सी हो उठती। किन्तु युवा-सम्राट् कंसकी मदभरी

आँखोंमें विस्मय, उद्वेलन और चिन्तनकी रेखाएँ उभरती चली आ रही थीं। देवकीके प्रति जन-जनकी उमड़ती इस श्रद्धाको यादव-सम्राट्की आँखें जितना देखतीं, उतना ही उनका मन उद्वेलित हो उठता।

नगरीकी चारों दिशाओंसे उमड़ती प्रजाको सम्राट् कंसकी आँखें तीक्ष्ण-सी हो एक-टक निहारतीं। रथ चक्र रुक चुके थे, तभी सम्राट्के उद्विग्न मनको सुन पड़ा: 'गत वर्ष जब हमने अपनी सहोदरा शूरभू और राष्ट्रपालिकाको विदा दी, तो प्रजामें इतनी श्रद्धा और अभिनन्दनका भाव नहीं था।'

सुनकर सम्राट्की मनोदृष्टि स्मृति-पटलकी ओर उठ गयी। तभी स्मृति इठलाती-सी पुनः आ बोली: 'दो वर्ष पूर्व जब देवरक्षिताका विवाह वसुदेवसे किया गया था, तब तो प्रजामें उनके लिए इतना विपुल अभिनन्दनका भाव कहाँ था?'

स्मृति-पटलपर अंकित चित्रोंको देख सम्राट्का मन उद्वेलित-सा हो कह उठा: 'हूँ, हम भी तो यही जानना चाहते हैं कि देवकीके प्रति प्रजा-जनोंमें इतनी श्रद्धाका भाव क्यों?'

अपने ही प्रश्नोंका उत्तर पानेकी चेष्टामें सम्राट् कंसका मन उलझने लगा। नेत्र तीव्र-से हो रथको आगे बढ़ानेकी चेष्टामें पथ खोजने लगे। किन्तु रथ-चक्रोंको पथ और मनके प्रश्नोंको उत्तर न पाता देख सम्राट् कंसका समग्र अन्तर्मण्डल विक्षुब्ध होने लगा। फिर समग्र विक्षुब्धता और व्यग्रताके बीच एक भाव आ स्पन्दित हुआ: 'देवकी जन-जनके लिए अतिदयार्द्र और स्नेहशील भी तो रही है!'

'हूँ!'—कहकर सम्राट् कुछ और भी सुननेके लिए उत्सुक हुए। तभी दूसरी विचारणा आ झंकृत हुई: 'देवकीकी स्नेहशीलता और अनुरोधपर ही तो महन्तों और श्रमिकोंपरसे राज्यांश समाप्त किया गया था!'

सुनकर सम्राट् स्मरण-सा करते हुए कह उठे: 'हाँ, ठीक है। देवकी साम्राज्ञी अस्तिके स्नेहका अवलम्बन लेकर हमारी योजनाओं और नीतियोंमें अपना सक्रिय सहयोग देती रही है।'

सम्राट्के कुछ और आगे विचारनेसे पूर्व ही स्मृति-लहर मुस्कराती हुई-सी पुनः मुखरित हो उठी: 'वणिकों, गोपों और कृषकोंपर भी तो राज्य करमें कमी देवकीके अनुरोध-पर ही की गयी थी!'

सुनकर सम्राट् कुछ और भी स्मरण करनेकी चेष्टा करने लगे कि विचार-मन्थनसे उठती एक तरंग खिलखिलाकर हँसती बोल उठी: 'सम्राट् द्वारा जन-कल्याणमें किये सभी कार्योंका श्रेय सम्राट्को न मिलकर उनकी स्नेहशीला बहन देवकीको ही तो मिला।'

'ओहो!'—कहते हुए सम्राट् कंस कई क्षण तो स्तब्ध हो उस विचारणाकी मुस्करा-हट और अभिव्यक्तिपर सोचते रह गये।

देवकीकी लोकप्रियताका कारण जान फिर यादवसम्राट् रथ-चक्रोंको गति देनेकी चेष्टा करते हुए स्वयं ही कह उठे: 'हम देवकीकी स्नेहशीलताके साथ-साथ उसकी विलक्षण प्रतिभा और राजनीतिक-प्रज्ञाके सम्मुख भी तो झुकते आये हैं।'

रथ-अश्वोंको मन्थरगतिसे आगे बढ़ाते हुए सम्राट् कंसकी विचारचिन्तना आगे कह उठी : 'सम्राज्ञी अस्तिकी राजनीतिक प्रतिभा और कूटप्रज्ञाके सम्मुख तो आप सदव ही नतमस्तक होते आये हैं।'

'हाँ, मगधनन्दिनी अस्तिकी कूटराजनीतिके बलपर तो हम यादव-मण्डलके सम्राट् ही बनें।'—कहते हुए सम्राट्का अहं तनिक हर्षितभावसे राजपथकी ओर निहार उठा।

फिर पुलकित-से सम्राट्को आगे विचारते हुए कुछ ही क्षण व्यतीत हुए थे कि कर्ण-पटोंसे गगन भेदी महाराज वसुदेवका जय उद्घोष आता सुन यादव-सम्राट्का अहं कुछ सहमता हुआ-सा रह गया और आँखें तनिक तीव्र हो दूरतक देख उठीं।

राजपथपर गोपुरसे उमड़ता गोप-मण्डल हर्षोन्मत्त स्वरसे महाराज वसुदेवका जय-उद्घोष कर रहा था। गीत गाती हुई गोपांगनाएँ नववधूके दर्शनके लिए मचल-सी पड़ रही थीं।

गोपजनोंके उमड़ते हर्ष और अभिनन्दनको वर-वेशमें सुशोभित वसुदेव करबद्ध हो स्वीकार कर रहे थे। वधू परिधानमें सिमटी-सी देवकी अर्ध-उन्मीलित नेत्रोंसे गोप-नारियोंका सम्मान और आशीष सँजोती रहीं।

किन्तु धान्य एवं पुष्पवर्षाके बीच महाराज वसुदेवका जय-उद्घोष यादव-सम्राट्के कर्ण-पटोंको बींधता चला जा रहा था।

सभी दिशाओंसे गूँजित महाराज वसुदेवकी जयकारध्वनि रथका संचालन करते हुए कंसको कई क्षणोंतक स्तम्भित कर गयी। स्तम्भनभरे क्षणोंमें सम्राट्के नेत्र मुँद गये अश्वोंकी रास हाथोंमें ही थम गयी।

कई क्षणोंके स्तम्भनके बीच बार-बार गूँजित होती 'महाराजा वसुदेवकी जय'-ध्वनि सम्राट्के अन्तरालको बींधती चली जा रही थी।

और फिर तीव्र-वेदनासे सम्राट् कंसका अन्तर्मन चीत्कार कर उठा। 'गोप-मण्डलका अधिपति वसुदेव महाराजा···और समस्त व्रजमण्डलका एकाधिपति कुछ भी नहीं?···।'

फिर तो निमेषमात्रमें ही कंसका अहंकार फुत्कार-सा उठा : 'ओहो, सर्वत्र वसुदेव और देवकीका जय-जयगान और अभिनन्दन।···और यादवेन्द्र भोजराज कंसका कहीं भी तनिक-सा न जयकार और न अभिनन्दनका भाव ही······।'

कुछ क्षणोंमें सम्राट् कंसकी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ सजग हो विचार कर उठीं। विचार-मुद्रामें लीन कंसके हाथोंसे अश्वोंकी रास तनिक ढीली पड़ गयी। सम्राट्की विक्षुब्ध, चिन्तित-सी अवस्थामें पुष्पक-रथ गोपुरपर जा पहुँचा।

गोपुरके समीप खड़ी दासियोंके कन्धोंपर रखे जल-कलश स्वर्णिम किरणोंसे प्रदीप्त हो उठ रहे थे। तभी सम्राट्की पलकें उन्मीलित-सी हुईं और देवकीजीने उन मंगल-कलशोंमें स्वर्णमुद्राएँ डाल बिदा ली।

रथको गोपुरसे आगे बढ़ाते हुए सम्राट् विचार उठे : 'हमने वृष्णिवंशीय वसुदेवकी जनशक्ति और कुल-शौर्य देखते हुए ही तो उनसे मित्रता और सम्बन्ध बनाये रखना श्रेय-

स्कर समझा था।···हाँ, साम्राज्ञी अस्तिने भी तो देवकीको वसुदेवके परिणय-सूत्रमें बाँध देनेमें कूटनीति ही समझी थी?'

अपनी ही विचारणा और नीति-प्रज्ञाकी बात सुन कंसका उद्विग्न मन तनिक शान्त हुआ और फिर उसने रथ-चक्रोंको गोपुरसे बाहरकी ओर गति दी।

पुष्पक रथको बाहर आते देख राजमार्गोंपर दूरतक खड़े ग्राम्यजनोंमें हलचल-सी हुई और फिर सभी गोप और कृषकजन रथपर धान्यवर्षा करते हुए उच्चस्वरसे 'महाराजा वसुदेव' और 'महारानी देवकी' का जयजयकार करने लगे।

सम्राट्के नेत्र दूरतक उमड़ पड़ते हुए जन-प्रवाहको पुनः तीव्रतासे देख उठे।

गोपांगनाएँ दही-दूधसे भरे पात्र कन्धोंपर उठाये नववधूका मंगलाचार करती हुई रथकी ओर मचल पड़ीं।

जन-प्रवाहमें सर्वत्र ही वसुदेव और देवकीके प्रति उमड़ती श्रद्धा पुनः सम्राट् कंसके अन्तर्मण्डलको विक्षुब्ध करने लगी। विक्षुब्धसे अन्तर-व्योममें तर्क-वितर्क, नीति, शंका और आशंकाओंका झंझावात-सा चलने लगा। समग्र अन्तर्द्वन्द्व और झंझावातके बीच रथ-चक्रोंकी गति मन्द पड़ने लगी। उसी झंझा और द्वन्द्वके बीच अन्तरालसे कूट-प्रज्ञाका एक स्वर आ मुखरित हुआ: 'देवकीकी राजनीतिक प्रतिभा और वसुदेवके शौर्यने यदि एक दिन यादव-सम्राट्की एकतन्त्र-व्यवस्थाके विरुद्ध विद्रोह कर दिया तो?··'

कूट-प्रज्ञाकी आशंकामयी तरंगसे सम्राट् कंस स्तब्ध-सा, प्रकम्पित-सा और भयभीत-सा हो बोल उठा: 'क्या देवकी कभी हमारे विरुद्ध विद्रोह कर सकती है?'

'क्यों, क्या हुआ?'—कंसकी कूटप्रज्ञा मुस्कराती हुई व्यंग्य कर उठी: 'क्या उग्रसेन-की गणतन्त्र-व्यवस्थाके विरुद्ध उन्हींके पुत्र कंसने क्रान्ति नहीं की?'

सुनकर कंसका रोम-रोम भयभीत-सा होता बोल उठा: 'क्रान्ति—मैंने?'

'हाँ, क्रान्ति!'—कूटप्रज्ञा आगे भी कह उठी—'क्या मगधनन्दिनी अस्तिकी राज-नीतिक प्रतिभा पाकर तुम्हारा शौर्य यादव-सम्राट् नहीं बना?'

अपने ही कर्म और अपनी ही कूटप्रज्ञासे कंसके समग्र अन्तर्मण्डलमें भयंकर प्रभंजन आ चुका था और उस प्रभंजनमें अपने ही नवनिर्मित साम्राज्यके विरुद्ध उसे क्रान्तिकी ज्वालाएँ धधकती दीख पड़ने लगीं। फिर तो सर्वत्र ही वसुदेव और देवकीके अभिनन्दन और जयजयकारकी एक-एक तरंग यादव सम्राट् कंसके रोम-रोमको आशंकित तथा भयभीत करने लगी।

इसी भय और आशंकाके अतिरेक तथा प्रभंजनके बीच कंसको चारों दिशाओंसे अपनी ही कूट प्रज्ञाका स्वर गूँजित होता हुआ-सा सुनायी पड़ने लगा: 'देवकी और वसुदेवका मिलन एक दिन जिस महाक्रान्तिको जन्म देगा, वह तुम्हारे साम्राज्यका महाकाल ही बन जायगी कंस!'

फिर तो अपने साम्राज्यके विरुद्ध विद्रोह और क्रान्तिकी आशंकाओंसे उठती विभीषिकाओंमें कंसका देवकीके प्रति संजोया सारा स्नेह स्वाहा होने लगा और देवकीकी

समस्त राजनीतिक प्रतिमा वसुदेवके संसर्गसे अपने ही विरुद्ध क्रान्तिकी सर्जना करती साकार दीख पड़ने लगी।

कूटप्रज्ञाका स्वर देववाणीकी भाँति बार-बार गूँजित हो रहा था : 'देवकी और वसुदेवका मिलन महाक्रान्तिकी सर्जना करेगा कंस!'···क्रान्तिकी आशंकासे उठती एक-एक लहर कंसके रोम-रोमको प्रकम्पित करती चली जा रही थी। उसके समस्त शरीरमें प्रस्वेद आ चुका था : हाथोंसे रथ-अश्वोंकी रास छूट गयी थी।

तभी तनिक सचेत-से हो कंसने अश्वोंकी रास उठाते आकाश-मण्डलकी ओर निहारते हुए कहा। 'क्या हम स्वप्न देख रहे थे?'

राजनीतिक चेतना मुस्कराती हुई उत्तर दे उठी : 'यादव-सम्राट्! स्वप्न नहीं, भावी सत्य देख रहे हो।'

'ओहो!'—कहते हुए सम्राट् कंसने तीव्रदृष्टिसे इधर-उधर निहारते रथको आगे बढ़ाया। फिर कुछ ही क्षणोंमें सम्राट्के मुखपर मुस्कानकी रेखाएँ उभरने लगीं।

मुस्कानके बीच कंसकी कूट-प्रज्ञाने भावी काल-चक्रको भाप लिया था और क्रान्तिकी सर्जनासे पूर्व ही देवकीका सौभाग्य-चक्र पलट गया था। कुछ ही क्षणोंमें रथ-चक्रोंमें तीव्रगति आ गयी थी और पतिगृहकी ओर चलनेवाला पुष्पक रथ बन्दीगृहकी ओर चल पड़ा था।

फिर तो कुछ ही समयमें पुष्पक-रथ नगरीके बाहर एक पहाड़ीमें स्थित बन्दीगृहके द्वारपर जा रुका। रथके रुकते ही अश्वारूढ़ सैनिकों तथा देवकी और वसुदेवके आश्चर्यभरे क्षणोंको भंग करते हुए सम्राट् कंसने उच्चस्वरमें कहा : 'देवकी और वसुदेव इस समय राजबन्दी हैं!'

कौशेय-पट उठाकर वसुदेवने चकितभावसे पूछा : 'किस अपराधमें?'

कंसने रथकी रास छोड़ एक सैनिक अश्वपर आरुढ़ होते हुए कहा : 'क्या तुमने आकाशवाणी नहीं सुनी वसुदेव?'

'कैसी आकाशवाणी?'

'यही कि देवकी तुम्हारे महाकालको जन्म देगी, सम्राट् कंस!'

'कब और कहाँ?'

वसुदेवके प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना सम्राट् कंस अपने अश्वपर राजप्रासादकी ओर विद्युद्-गतिसे दौड़ चुका था। और राजनन्दिनी देवकी मुस्कराती हुई-सी राजबन्दिनी बन चुकी थीं।

× × × ×

राजनन्दिनी देवकीको राजबन्दिनी बनाये जानेका समाचार समस्त मथुराचलमें विद्युत्-गतिसे फैलता चला जा रहा था। समाचार जिसने जहाँ सुना, वह वहीं स्तम्भित हो रह गया। घड़ीभरमें सर्वत्र हाहाकार और क्रन्दन मच उठा। साथ ही जनअन्त:सुसे उठते हाहाकार और विक्षोभपर मगध-सैनिकोंका आतंकभरा दमन-चक्र भी चलने लगा।

× × × ×

आजकी सारी समस्याएँ

धर्म-संस्थापनार्थाय

श्री गोविन्द शास्त्री

★

भारत द्वारा किये गये प्रथम अणु-विस्फोटकी विश्वमें तीव्र प्रतिक्रिया हुई। तथा-कथित बड़े देशोंको और उनके अनुगामी देशों यह धमाका असहनीय लगा। वर्ण भेद और आभिजात्यके दर्पसे पीड़ित देश किसीको उन्नत देखना नहीं चाहते। जिस परमाणुको वे फैशनके रूपमें प्रदर्शनकी वस्तु बना चुके हैं, उसका लाभकारी उपयोग करना भी उनको नहीं रुचता। एक धनवान् मुखशुद्धिके लिए पान खा सकता है, किन्तु एक गरीबका किसी औषधिके अनुपानके रूपमें पान खाना उसे सह्य नहीं होता। मानवमात्रके कल्याणकी कामना करनेवाले, लाखों, रुपयोंका दान-धर्मादा करनेवाले देशोंका दम्भ भारतके विस्फोट करनेपर वास्तविक रूपमें आ गया। ये देश भारतको अछूत, अतएव दयनीय ही समझते हैं, इनकी दृष्टिमें विकासशीलका अर्थ सहानुभूतियोग्य और सहायताका अर्थ लाभकारी दान और आन्तरिक नीतिमें घुस-पैठ हुआ करता है। ये चाहते हैं कि भारत गरीब ही नहीं, निर्बल भी बना रहे। वास्तवमें ये भारतके रूप और प्रकृतिको अच्छी तरह नहीं समझते। इसकी विलक्षण भूमिमें राम-लक्ष्मण जैसा भ्रातृ-प्रेम और कौरव-पाण्डवों जैसा भ्रातृद्वेष दोनों हैं। इसी भूमिका आकर्षण परमपुरुषको मानवीय रूप धारण करनेको विवश करता है। यही धरती शुकदेव-सरीखे वीतरागको जन्म दिया करती है। राग द्वेष, मोह-वैराग्य जैसे द्वन्द्व

प्रातःवेलामें जहाँ गीतोंका मधुर स्पन्दन था, पुष्प और लाजाका झिरझिर स्वर था, देवकी और वसुदेवके अभिनन्दनका जय-उद्घोष था, वहीं मध्याह्नवेलामें था मगधसे आये राजसैनिकोंका आतंक, उस आतंकसे उठते हाहाकारका स्वर, अन्तःसे उमड़ता क्रन्दन और था सम्राट् कंस द्वारा सुनी गयी आकाशवाणीका उद्घोष !

कंसका कूट-चक्र तीव्रगतिसे चलता चला जा रहा था तो देवकीका भाग्य-चक्र आकाशवाणीसे जुड़ता जा रहा था। नवपरिणीता देवकीके जीवनमें वह दैवकी बिडम्बना थी या राजनीतिकी कूट-छलना ?—यह तो सम्राट् कंस और मुस्कराकर राजबन्दिनी बनती देवकीके अतिरिक्त अन्य किसीने ठीकसे नहीं जाना।

•

वस्तुतः सत्य और असत्यके देवत्व और दानवत्वके प्रतीक हैं। इनका प्रतिपाद्य सांसारिकतासे इतर होता है। भारत दानवत्वको भी फलने-फूलनेका पर्याप्त अवसर देता है; किन्तु वह देवत्वको निगलनेके लिए जब उद्यत होता है, अधर्म जब धर्मको लीलनेकी चेष्टा करता है तभी धर्म और देवत्वमें दुर्धर्ष शक्तिका उदय होता है और कृष्णका सनातन उद्घोष सुना जाता है। धर्म-संस्थापनार्थाय!

आज जीवनमें चतुर्दिक् व्याप्त असन्तोष और उसके कार्यभूत भ्रष्टाचारको पनपता देखकर सारा राष्ट्र चिन्तित है, मुद्राके प्रसार और उसके निरन्तर ह्रसमान मूल्यको देखकर प्रशासन चिन्तित है। यह अविश्वास सरकारको दम्भ रचने और प्रजाको छद्म करनेके लिए विवश कर रहा है। व्यक्ति अपनी सत्ताके सामने किसी अलक्षित, अव्याहत, अतएव सर्वत्र व्याप्त शक्तिको मानना चाहता ही नहीं। निश्चित है—वह चिन्तित भी होगा, दुखी भी रहेगा। अन्यथा यह सब कुछ जो घट रहा है, अधर्मका विस्तार है। इस बहिर्मुखी विस्तारके सामने मानवका अन्तर्हित विराट् वामन ही नहीं, उपेक्षणीय भी हो गया है। किन्तु क्या इस अधर्मका प्रसार इतना प्रबल हो चुका है कि धर्म इसके उदरमें समा गया? नहीं, ऐसा नहीं। यह मेरा ही विश्वास नहीं, भारतकी परम्परागत आस्था रही है कि ऐसी स्थिति आते-आते कृष्णकी वाणी फिर गूँज उठेगी। अधर्मके साम्राज्यको देखनेका धैर्य और साहस भी हममें होना चाहिए। मान लिया, हममें पीड़ा होती है, पर यह पीड़ा निष्फल नहीं है। आजका भौतिक विज्ञानी बड़ा चतुर है। वह 'चेक्' और 'कण्ट्रोल' ये दो ही शब्द जानता है। कौन कहे, वह अपनी सीमा और सामर्थ्यसे परिचित रहा है? इसलिए केवल नियन्त्रण-नियमनके पर्यायोंतक ही रहना चाहता है या ये उसके अहंकारकी भूमिकाएँ हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सर्वसमर्थ प्रकृति वैज्ञानिक बालककी चपलता एक सीमातक सहन करती रहेगी और फिर जब चाहेगी, तब थोड़ा-सा पार्श्व-परिवर्तन कर उसके समारम्भको धूलिसात् कर देगी। आजसे पहले ऐसा ही होता आया है। विज्ञानका यह 'कण्ट्रोल' जितना निरर्थक है, उतना ही भ्रान्त भी।

वैज्ञानिक क्षेत्रमें 'कण्ट्रोल' शब्द प्रचलित है और इसे त्राणदायी मानकर वैज्ञानिक इसी शब्दके पीछे भाग रहा है। परिवार-नियोजन या 'बर्थ-कण्ट्रोल' भी इसी कण्ट्रोल-शब्दकी प्रतिष्ठा है। जनसंख्याके विस्तारका गणित (कुरुक्षेत्रमें खड़े और कृष्णके विराट् रूपको देखकर किंकर्तव्य-विमूढ एवं भयभीत अर्जुनकी तरह) आजके वैज्ञानिकको संत्रस्त किये हुए है और वह 'कण्ट्रोल'की शरणमें जाना श्रेयस्कर समझ रहा है। आश्चर्य और क्षोभ होता है कि इतनी बड़ी गीताके रहते हुए आजका क्रान्तिध्वजी युग इससे आगे क्यों नहीं पढ़ता, अधर्मके विस्तारकी सुनियोजित समाप्तिको श्रद्धानत होकर हृदयंगम क्यों नहीं करता? यह इसका दोष नहीं, इसकी बहिर्मुखताकी प्रकृति ही ऐसी है। प्रत्येक बहिर्मुखता जड़ होती है और जड़ शक्ति किसी सीमातक गर्विष्ठ भी होती ही है। कण्ट्रोल शब्दको त्राण और प्रमाण माननेवाले अपनी कर्मण्यतापर किंवा क्षमतापर इतराकर उस शक्तिकी महिमाको भुला देते हैं जो विस्तार कर रही है। इनको कौन समझाये कि जनसंख्याका विस्तार विनाशका प्रारूप हुआ करता है।

क्या भगवद्गीता यह नहीं समझाती कि जनसंख्याका अकल्पित विस्तार केवल अठारह दिनमें समेट लिया जाता है ? क्या गीताका पूर्वापर यह नहीं कहता कि किसी भी वर्गका सीमातिशायी विस्तार अप्राकृत होता है और प्रकृतिकी व्यवस्थामें अप्राकृतको अवकाश नहीं है ? इसलिए यह जो अधर्म फैल रहा है, अराजकता फैल रही है, भ्रष्टाचार और दुःखका प्रसार हो रहा है, ये सब अप्राकृत हैं; पर इनका भी एक क्रम है । जन-समूहकी वृद्धि किसी मर्यादा, मान्यता, मूल्य और नैतिकताको नहीं मानती । वह उच्छृंखल होती है और यही उच्छृङ्खलता युगपरिवर्तन करती है, विनाशकी भैरवी गाती है । अतः हमें आस्थावान् रहकर प्रकृतिकी सृजनशीलताके साथ जुड़े संहारकी भी प्रतीक्षा करनी चाहिए ।

प्रकृति गुणात्मक है । उसकी राज सशक्ति सृजन करती है और तामसी रूप संहार करता है । प्रत्येक गुण सामान्य अवस्थामें दूसरे गुणोंसे गाढतर रूपमें आबद्ध रहता है । इस समयका यह सृजनशील रजोगुण तमोऽभिमुख है, इसीलिए चिन्ताका प्रसार हो रहा है । प्रत्येक घटक दुखी है, समाज अशान्त है । यान्त्रिक विकासकी यह जड़ता तमोगुणकी वरणक स्थिति है और इसके साथ परपक्षकी तरह जुड़ा विनाश भी अवश्यम्भावी है ।

विज्ञानकी प्रगतिसे चौंधिया कर इसका गुणानुवाद करनेकी अपेक्षा यदि इसे भारतीय दृष्टिसे देखें तो इसका दूसरा ही स्वरूप दिखायी देगा और उस मूल्यांकनको देखकर मेरी मान्यता भारतकी चिरन्तन-परीक्षित व्यवस्था सिद्ध होगी । किसी भी महानगरके भीड़भरे चौराहेपर खड़े होनेपर जो दृश्य दिखायी देता है, वह स्तब्ध कर देनेवाला होता है । उसे देखकर कोई भी व्यक्ति आजके विज्ञानके चमत्कारके सामने नतमस्तक हो सकता है । किन्तु इसको देखनेका दूसरा आयाम भी है और उसका फलितार्थ भयभीत कर देनेवाला भी है । मुझे, कम-से-कम मुझे ये सारे यन्त्र, मोटर, ट्रक, रेल और फैक्टरियोंमें घर-घराहट कर रही छोटी-बड़ी मशीनें लौह-कुण्डकी तरह लगती हैं जिनमें काले तेलकी आहुति दी जा रही है । लगता है, प्रकृति मानव-मेधके लिए व्यापक रूपमें अभिचार-यज्ञ कर रही है जिससे वायु और जल दूषित हो चुके हैं । शब्द भी आप्यायक रूपको छोड़कर विनाशक रूप धारण कर चुका है । उसकी क्रूर-कर्कश ध्वनि आजके वैज्ञानिकका स्वचालित हुम्, फट् आदि पल्लव हैं और यह क्रूर यज्ञ अहर्निश चल रहा है । मानव जब आत्मनाश और सामूहिक विनाशकी पूरी पृष्ठभूमि सजा चुका है तो फिर अणुविस्फोटसे, बढ़ती जनसंख्यासे, भ्रष्टाचारसे डर क्यों रहा है ? वह यह क्यों नहीं समझ लेता कि उसके भीतर अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें स्थित प्रकृति सब कुछ कर रही है, कर लेगी । किन्तु यह आस्था उसे नहीं मिल सकती, स्वयं प्रकृति यह नहीं चाहती । विनाशके पहले आस्था नष्ट होती है । इस सारे समायोजनमें मुझे फिर वही अनुगूंज सुनायी देती है : **धर्म-संस्थापनार्थाय ।**

सोने-चाँदीका जमाना गया, लोहेका आ गया, घी-दूधका स्थान खनिज कृष्ण-वर्णी तेलने ले लिया । आजका मानव यह समझ रहा है कि उसने यह उत्तरोत्तर प्रगतिकी है ? उसका समझना भी ठीक है, किन्तु वह इस तथ्यको समझ नहीं पा रहा कि इन साधनोंपर उसे आना ही था, इनके अलावा किसी अन्य स्थितिकी कल्पना सम्भव ही नहीं थी । मन्त्र-

युगमें और तन्त्र युगमें अर्थात् कृतयुगसे द्वापरतक वनस्पति और चाँदी-सोनेका मूल्य था, क्योंकि उस समय रजोगुण सत्त्वाभिमुख था। इसीलिए धर्म-संस्थापन-हेतु वचनबद्ध विष्णुको गहन कृष्ण-रंगका ही शरीर धारण करना पड़ा। कृष्णवर्ण तमोगुणका प्रतीक है और विनाशक शक्ति एतदितर रंगमें आ नहीं सकती। आजके लौह-उपासक युगमें और काले तेलकी प्रतिष्ठा करनेवाले भौतिक-विज्ञानमें तमोगुण मूर्त हो रहा है। देवीके स्वरूपको विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकलाः जगत्सु के रूपमें देखनेवाली दृष्टिसे मशीनोंके विकास, काले लोहकी प्रतिष्ठा और काले तेलकी उपयोगितामें उसी कृष्णकी तामसी शक्तिका उदय हो रहा है। यह सारा विकीर्ण तमोगुण यथासमय पुंजीभूत होकर रहेगा और एकबार फिर पूर्ण पुरुषकी प्रतिज्ञा सान्द्र-मन्द्र स्वरमें गूँजेगी : सम्भवामि युगे-युगे, धर्म संस्थापनार्थाय।

यह यन्त्र-युग है, किन्तु कारणवादी और ऐन्द्रिय प्रतीतिको प्रमाण माननेवाले विज्ञानने इसे लोहेसे साकार किया है। भारतने यन्त्रोंकी परिकल्पना ही नहीं की थी, उनके प्रभाव-परिणामको भी देखा था। किन्तु भारतीय यन्त्र आत्मवादकी धुरीपर, जन्मे विकसित हुए थे। इसलिए उनका पर्याप्त प्रसार भी सामाजिक विसंगति और अशान्तिका कारण नहीं बना। अणुबमसे भी लाखों गुना अधिक शक्तिवाले ब्रह्मास्त्रका आविष्कार करनेवाला भारत स्थूल-विस्तारमें विश्वास ही नहीं कर सका। इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी कि रक्षाके लिए बनाये गये उपकरण ही भीषण समस्या बन जायें! अमेरिका अपने बमोंके जखीरेको समुद्रमें गाडनेके लिए विवश हो जाय! भारतका प्रकृति-विजय धर्मप्राण रहा है, इसलिए प्रकृतिने उसे मातृवत् वत्सलभावसे पोषित किया है। बालकके कन्धेपर बैठनेसे कोई भी माँ क्रुद्ध नहीं होती, क्योंकि बालकमें अहंकार नहीं होता। प्राचीन भारतीय विज्ञानने प्रकृतिकी प्रणतभावसे पूजा करके व्यक्तिगत तपस्यासे अमोघ अपरिमित शक्तिवाले अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये थे। उनकी प्राप्ति, उनकी स्थिति कभी भी समस्या नहीं बनी। वे सारी सिद्धियाँ उपकरणगत नहीं, उपयोक्तागत रही थीं। इसीलिए विष्णुने इन्द्रपुत्र जयन्तके पीछे तिनकेका ही 'गाइडेड मिसाइल'के रूपमें प्रयोग कर लिया। ऐसा आत्मवादी सचेतन ज्ञान सामाजिक अशान्तिका विस्तार युद्धक-सामग्रीके कारण नहीं कर सकता।

प्रकृति परिवर्तन धर्मिणी है। गतिमें एकरसता नहीं हो सकती। इसलिए सतयुगको भी बदलना पड़ा तो त्रेताको द्वापरका स्वागत करना पड़ा। यह कलियुग है, दुःखों, कष्टों और सामाजिक विसंगतियोंका चरम युग! त्रेताकी धर्मबहुलता त्रेतामें प्रतिधर्म बनी और द्वापरमें कौरवोंके रूपमें अधर्मका प्रतीक बन गयी। वही अधर्म आजका जीवन हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति कौरवी प्रकृतिका प्रतीक बन गया है। वह अपने ही अविश्वास, आशंका और कुण्ठासे पीडित है। अणु-विस्फोटके धमाकोंमें यही कुण्ठा प्रतिफलित हो रही है, परिवार-नियोजनके विज्ञापनोंमें, भ्रष्टाचारके राष्ट्रिय-धर्ममें भी यही कुण्ठा है। ऐसी स्थितिमें हम एकाग्र होकर कृष्णके उभरते उद्घोषको सुननेकी कोशिश करें, गीताका पाठ करें।

●

ब्रह्मलीन युगलकिशोर बिरला

कुछ अनुकरणीय पुण्य-संस्मरण

चौधरी श्री शिवनाथ सिंह 'शाण्डिल्य'

★

श्रद्धेय सेठ घनश्यामदासजी बिरलासे मेरा पुराना परिचय था। इसी कारण एकबार बिरला-हाउस कलकत्तेमें ठहरनेका अवसर मिला। मेरे साथ मेरा भाई भी था। श्री घनश्यामदासजी तो यूरोप गये थे। स्व० युगलकिशोरजी बिरला नहीं थे। बिरला-हाउसके जिस कमरेमें हम लोग ठहरे थे, उससे लगे दूसरे कमरेमें वे नित्य शामको आकर बैठते। उनकी देशभक्ति और दानशीलतासे तो हम लोग पहले ही परिचित थे, अब उनके सत्संगका भी अवसर मिला। हम दोनों उनके पास जाकर बैठने लगे और उनके व्यक्तित्व और व्यवहारसे अत्यन्त प्रभावित हुए।

सेठ युगलकिशोरजी देशके गिने-चुने धनवानोंमें एक थे, उदारता तथा दानशीलतामें तो सारे भारतमें अद्वितीय। फिर भी गर्व या दम्भ छूतक नहीं गया था। उनके पास बैठनेपर मालूम होता था कि हम किसी सेठके पास नहीं, बल्कि किसी सन्त महात्माके पास बैठे हैं। जबतक वे वहाँ बैठे रहते, सिवा धर्मचर्चाके और कोई चर्चा ही नहीं होती थी। बातोंसे पता चलता कि उन्होंने हिन्दू-धर्मका गहन अध्ययन किया है। अन्य धर्मोंके विषयमें भी उनका ज्ञान अत्यन्त विस्तृत रहा।

× × ×

इस घटनाके दो-तीन वर्ष बाद वे स्थायीरूपसे दिल्लीमें रहने लगे। लक्ष्मीनारायण-मन्दिरके निर्माणका काम प्रारम्भ हो गया था और वे उसे देखने एकबार अवश्य जाते। अपने पूज्य पिता और माताका दर्शन करने वे काशी जाते या कभी सार्वजनिक कार्योंके लिए बाहर जाना पड़ता। इसके सिवा अधिकांश वे दिल्लीमें ही रहते।

परिचय तो कलकत्तेमें हो ही गया था। दिल्लीमें मैं उनके पास बराबर आता-जाता रहता और वे मुझपर वही कृपा रखते। हिन्दू-जातिके उत्थानकी उन्हें बड़ी लगन थी और उसके उद्धारके लिए उन्होंने करोड़ों रुपये पानीकी तरह बहाये। मैं जब कभी उनसे मिलता, तो हिन्दू-संगठन और शुद्धिके लिए काम करनेपर जोर देते।

× × ×

स्वर्गीय बिरलाजीका जीवन एक तपस्वी महापुरुषका था। देश तथा जातिकी सेवा और भगवान्‌का भजन ही उनके जीवनका ध्येय रहा। पत्नीके निधनके समय उनकी आयु अधिक न थी और न कोई सन्तान ही थी। यदि कोई दूसरा उनकी जगह होता तो न मालूम कितने विवाह रचाता। किन्तु उनका इस ओर कभी ध्यानतक नहीं गया, आजीवन ब्रह्मचर्य-निष्ठ रहे। उनका संयम और सादगी आदर्श था और भोजन भी सात्त्विक एवं सूक्ष्मतम।

उनकी दिनचर्या यह थी—सुबह उठकर ११-१२ बजेतक भजन-पूजन, मन्दिर जाना और भोजन कर थोड़ा आराम। फिर सार्वजनिक हितके कामोंमें लग जाना। इसी समय दान-दक्षिणा माँगनेवालोंकी सुनवाई हुआ करती।

× × ×

श्री बिरला जैसे दानी देशमें बहुत कम हुए। उनका दान सर्वथा निःस्वार्थ भावसे होता। प्रसिद्धिसे बहुत बचते, इस तरह देते कि एक हाथसे दियेका दूसरे हाथको पता न चलता।

देवमन्दिरोंके निर्माण और सार्वजनिक संस्थाओंको दान देनेके अतिरिक्त वे कुछ ऐसे पुण्यकर्मोंमें भी धन-व्यय करते जो और लोगोंके ध्यानमें भी नहीं आ सकते।

एक दिन दिल्लीके बिरला-हाउसमें मुझे एक सज्जन मिले जो चेहरे-मोहरे और बात-चीतसे पक्के मुसलमान मालूम पड़ते थे। मैंने पूछा : 'आप किसलिए तशरीफ लाये हैं?' कहने लगे : "मैं हिन्दू हूँ और बँटवारेके समय पाकिस्तानमें जिन हिन्दू औरतोंका अपहरण कर लिया गया, उनको खोजता और पता लगनेपर उनके उद्धारका यत्न करता हूँ। अभी पाकिस्तानसे आ रहा हूँ। मेरा सब खर्च बिरलाजी देते हैं।"

× × ×

एक दिन एक नेपाली सज्जन मिले। उन्होंने तैराकीमें रिकार्ड कायम किया था। उनसे मालूम हुआ कि बिरलाजी उन्हें भी बराबर आर्थिक सहायता देते हैं। उनके द्वारपर जो भी याचक पहुँच जाता, कभी खाली हाथ नहीं लौटता था। एक दिन दो अधेड़ उम्रकी मुस्लिम महिलाएँ बिरला-हाउसके लॉनमें बैठी थीं। मैं बिरलाजीके पास बैठा था तो उनका प्रार्थनापत्र पहुँचा। उसमें लिखा था : 'हम अनाथ और असहाय हैं, गुजर-बसरका कोई जरिया नहीं। यदि हमें सिलाईकी मशीन दिलवा दी जाय तो पेट पालनेका साधन हो जाय।' बिरलाजीने उसी समय मशीन दिलवानेकी आज्ञा दे दी।

× × ×

मेरे गाँव माछरामें एक डिग्री-कालेज है। इसमें आसपासके गाँवके लगभग दो हजार विद्यार्थी पढ़ते थे। मेरे आग्रहपर बिरलाजी एकबार इस गाँवमें पधारे और चार हजार आबादीके इस छोटेसे गाँवमें यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो उन्होंने संस्थाको पाँच हजार दान देनेकी इच्छा प्रकट की। मैंने कहा। 'यदि आपकी राय हो तो इन्हीं रुपयोंसे छात्रावासके कमरे

बनवा दूँ।' उन्होंने स्वीकृति दे दी। फिर गाँवके कुछ आदमियोंने एक शिव-मन्दिरके जीर्णोद्धारका प्रश्न उठाया तो उन्हें भी तीन सौ रुपये दिलवाये।

गाँवमें हरिजनोंने एक बैंड बना लिया था। जब उन्हें बिरलाजीके आगमनका पता चला तो ये बाजा लेकर पहुँचे। पचास रुपये उन्हें दिये गये।

मैंने यह सोचकर कि पाँच हजार रुपये तो बिरलाजीसे मिलेंगे, शेष रुपये चन्देसे लगाकर ग्यारह कमरोंकी एक पूरी विंग तैयार करा दी।

जब भवन-निर्माणका काम पूरा हो गया तो मैंने बिरलाजीसे कहा : 'किसी आदमीको भेजकर भवनका निरीक्षण करा लिया जाय।'

बोले : 'इस भवनके बनानेमें कितने रुपये खर्च हुए हैं?'

मैंने जवाब दिया : 'खर्च तो दस हजार हुए, क्योंकि मैंने पूरी विंग बनवायी है। किन्तु आपको पाँच हजार देने हैं।'

वे बोले : 'अभी थोड़ी देर यहीं रुके रहो।'

शामको मन्दिर जाने लगे तो मुझे अपने साथ मोटरमें बिठा लिया। पहले धर्मसंघके कार्यालयमें गये और एक कर्मचारीको बुलाकर कहा : 'इन्हें दस हजार रुपये दे दो!'

मैंने इस खयालसे कि कदाचित् आप भूल कर रहे हैं, टोका कि 'आपने पाँच हजार रुपयेकी घोषणा करायी थी; बाकी रुपये तो मैंने चन्देसे लगाये हैं।'

बोले : 'नहीं, जब दस हजार खर्च हुए तो पूरी रकम दूँगा। चन्देका रुपया दूसरे काममें लगा देना।'

मैंने फिर निवेदन किया : 'इस इमारतका निरीक्षण हो जाना चाहिए और आपका आदमी खर्चकी रसीदें भी चेक कर आये।'

कहने लगे : 'मैं स्वयं इस संस्थाको देख चुका हूँ। मुझे तुमपर पूर्ण विश्वास है। चिन्ता न करो। जब अवसर मिलेगा, देख आयेगा।'

× × ×

यह थी उनकी आदर्श दानशीलता! लोगोंके सामने पाँच हजारकी घोषणा करायी और फिर बिना माँगे दस हजार दे दिये। उस जमानेके दस हजार आजकलके पचास हजारके बराबर होते हैं।

फिर मैंने उनसे इस इमारतपर उनके नामका पत्थर लगानेकी स्वीकृति चाही; किन्तु नहीं माने। बहुत आग्रह करनेपर पत्नी श्रीमती जवाहर देवी बिरलाके नामका पत्थर लगवानेके लिए सहमत हुए जो अब भी भवनपर सुशोभित हो रहा है।

युगलकिशोरजी बिरला इस संसारसे चले गये, किन्तु जबतक उनके बनाये अद्भुत और विशाल देवमन्दिर आकाश चूम रहे हैं और वे संस्थाएं सजीव हैं जिनकी स्थापना आपके दान द्वारा हुई, तबतक आपका नाम संसारमें अमर रहेगा। ठीक ही कहा है। कीर्तिर्यस्य स जीवति।

●

राजस्थानके सन्त बलदेव

श्री मुरलीधर बंका

★

[सन्त बलदेव राजस्थानके माने हुए सन्त थे। उनके निर्वाणकी रजत-जयन्तीके उपलक्ष्यमें सन्त बलदेव निर्वाण रजत-समारोहांकका प्रकाशन मण्डेला, राजस्थानसे किया गया था। सन्तोंका चरित्र व्यवहारके पथिकोंका बहुत बड़ा मार्गदर्शक हुआ करता है। इसी भावना से यह लेख प्रस्तुत है।—सम्पादक]

राजस्थानमें पिलानी और चिड़ावाके बीच एक छोटी बस्ती नरहर में रामावत स्वामियोंके परिवारमें श्री पुरुषोत्तमदासजीके घर मैंशीदेवीकी कोखसे १९३४ वि० मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीयाके दिन एक पुत्र हुआ। भविष्यत् गुणोंकी ग्रहयोजनाके अनुरूप ज्योतिषियोंके निर्देशपर उसका नाम 'बलदेव' रखा गया।

बलदेवके पिता पुरुषोत्तम गाँवके एक मन्दिरमें कीर्तन करते और सारंगी बजाते। साथी रामदास ढोलक बजाते। स्वरमें माधुर्य था। सारंगी और ढोलकका मेल खाता साज मधुर स्वरके गानमें अद्भुत आकर्षणका समावेश कर देता था। श्रोता मन्त्रमुग्ध हो सुनते और भगवत्-प्रेममें मादकतासे मस्त हो उठते।

बाल्य-जीवन : बालक बलदेव छोटी आयुमें ही पिताके साथ मन्दिर जाते और भक्ति-भावके साथ कीर्तन सुनते। कभी-कभी स्वयं भी मस्तीमें गाने लगते। सौम्य प्रकृतिके बालक-पर पिताके कीर्तनका विशेष प्रभाव पड़ा। भक्ति-भावनाका उभार हुआ। अवस्थाके अनुसार उसके संस्कार दृढ़ होते गये। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही बालकके मनमें परिवर्तन दीखने लगा। प्रातः कीर्तनके बाद बलदेव गौएँ चराते प्रभुलीलाका दर्शन करते। उसकी भक्तिभावना और कर्तव्य-परायणता देख माता-पिताकी बालकके प्रति स्नेह-भावना वृद्धिगत हो चली।

इसी प्रकार जीवन-क्रम चलता रहा। मन्दिरमें पिताके भक्तिभरे गान और गोचर-भूमिमें गौएँ चराते हुए प्रभुकी लीलाके दर्शन और चिन्तनमें पवित्र संस्कार दृढ़ भूमि बनाते गये।

तेरह वर्षकी आयुमें : तेरह वर्षकी आयुमें एक दिन बालक बलदेव मन्दिरमें पिताके साथ बैठे थे। कीर्तन हो रहा था। बालक बलदेव ध्यानावस्थित होकर कीर्तन सुन रहे थे। वहाँ उपस्थित झुंझुनूके निरंजन सम्प्रदायी मन्दिरकी मलसीसर शाखाके महन्त उद्धवदासजी बालककी भावना देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने पितासे कहा : 'यह बालक मुझे दे दो। अपने मन्दिरमें इसके पढ़नेका प्रबन्ध कर दूँगा। साथ ही मन्दिरमें पूजा-पाठ और भगवान्की सेवा भी करेगा।

पितासे स्वीकृति पाकर बालक बलदेव महन्तजीके साथ मलसीसर चला गया। अब वह बलदेवसे 'बलदेवदास' कहलाने लगे। नित्य-नियमानुसार भगवद्-भजनके साथ वे पं० सीतारामसे कुछ समय अध्ययन भी करते।

विवाह नहीं किया : कुछ वर्ष बाद माता-पिताको बलदेवदासके विवाहकी चिन्ता हुई। एक कन्याका चुनाव हुआ और पिता पुत्रको लिवाने मलसीसर आये। बलदेवदास तो मनसे विरक्त हो चुके थे। विवाह-बन्धनसे मुक्त रहना चाहते थे। फिर भी किसी तरह समझा-बुझाकर पिता उन्हें घर ले गये। विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। लेकिन बलदेवदासको बार बार यही अन्त-प्रेरणा होती कि तुम्हारे जीवनकी यह दिशा नहीं। तुम्हें तो स्वयंको प्रभुभक्तिमें समर्पण करना है। अन्तःप्रेरणाने जोर पकड़ा और बलदेवदास घर छोड़ मलसीसर लौट आये।

पिताने पहुँचकर पुत्रको बहुत समझाया, पर वह तो फकीरीमें रंग चुका था। विवाह-प्रस्ताव स्पष्ट अस्वीकृत कर सलाह दी कि उस कन्याका विवाह मेरे छोटे भाईके साथ कर दिया जाय।

महन्त उद्धवदासने भी शिष्यका दृढ़ निश्चय देख पिताको यही सलाह दी कि पुत्रको फकीर ही बनने दो। उसकी धारणामें बाधा मत डालो। मैं सब प्रकारसे ध्यान रखूंगा जिससे यह अपने संकल्पमें सफल हो।

पिता पुरुषोत्तमदासके पास अन्य कोई उपाय न था। उन्होंने महन्तका प्रस्ताव स्वीकारकर कन्याका विवाह अपने छोटे पुत्रके साथ कर दिया।

दीक्षा : महन्तजीने बलदेवदासका निश्चय जानकर उनका विधिवत् मुण्डन करवाया और कण्ठी बाँध दी। 'कृष्ण-कृष्ण गुरु गोविन्द गोपाल' गुरु-मन्त्रसे उन्हें दीक्षा दी गयी।

चार वर्षतक इसी मन्दिरमें रहकर बलदेवदास गुरु-सेवा तथा मन्दिरकी पूजा करते रहे। इससे उन्हें मानसिक शान्ति नहीं मिली। महन्तजीसे उनका कुछ मतभेद भी रहने लगा। फलतः इन्हें मण्डेलाके चबूतरा-मन्दिरमें भेज दिया गया। यह मन्दिर मलसीसरके मन्दिरकी एक शाखा थी।

यहाँ आनेपर बलदेवदास "बाबा बलदेवदास" कहलाने लगे। नित्य-नियमानुसार पूजा-पाठ करते और निवृत्त होनेपर गाँवमें भिक्षाके रूपमें आटा माँगने चले जाते थे। यह मन्दिर मलसीसरकी शाखा होते हुए भी वहाँकी पंचायतके प्रबन्धमें था। श्री बख्तावरमल जोशी भगवत् कथा करते थे।

सं० १९५८ वि० तक बाबा इसी मन्दिरमें रहते हुए संयम-नियमका पालन करते थे। चान्द्रायण व्रत रखते थे। आदर्श आचार-विचारसे गाँवकी जनताकी बाबाजीके प्रति बहुत श्रद्धा और सम्मान था।

गुरुगद्दी तथा वैराग्य : इन्हीं दिनों मलसीसरमें महन्त उद्धवदासका शरीर रोगग्रस्त हो गया। बाबा बलदेवदास समाचार सुनकर गुरुजीके पास पहुँचे। महन्तजीका अन्त समय आ गया था। उन्होंने बाबा बलदेवदासको गुरुकी चादर ओढ़ानेकी आज्ञा देकर स्वयं प्राण विसर्जन कर दिये।

बाबाजी तीन वर्षतक गुरु-गद्दीपर बैठकर मन्दिर-पूजा करते रहे। इससे इन्हें

सन्तोष न हुआ। उनके अन्तःकरणमें धारणा-ध्यान द्वारा भगवद्-दर्शनकी अभिलाषा थी। यहाँ रहते हुए वह पूर्ण न हो सकी।

सं० १९६१ वि० में मन्दिरके पूजा-पाठका कार्य अपने भक्तोंको सौंपकर बाबाजी तीर्थयात्राके लिए चल पड़े। बदरीनारायणकी यात्राकर सं० १९६२ वि० में पुनः मलसीसर आ गये। कभी-कभी मण्डेला भी चले जाते थे। महन्त-पदकी तो बाबाजी तृष्णा छोड़ चुके थे। धुन आयी तो यज्ञोपवीतका भी परित्याग कर दिया। मलसीसरसे गूगाजीके जंगलमें एकान्तवास करने चले गये। सं० १९६३ के उत्तरार्धमें तपोभूमि तोसाम जाकर तपस्या करने लगे। कुछ काल वहाँ रहकर पुनः मलसीसर आ गये। मनमें अभी पूर्ण शान्ति न थी।

सं० १९६४ वि० में सन्त नत्थूरामजी मलसीसर आये। उनके दर्शन और उपदेशसे बाबाजीको शान्तिका अनुभव हुआ। गाँवके बाहर जंगलमें एक कुएँपर वे ध्यानावस्थित होकर भगवद्भक्ति करने लगे। इक्कीस दिन यहीं ध्यानावस्थित रहे। इसी ध्यानावस्थित दशामें "ॐ हरिहर" की ध्वनि लगाते हुए मण्डेलेके पास गाँवके बाहर एक पेड़के नीचे समाधिस्थ हो गये। भूमि ही शय्या थी और भुजाएँ ही तकिया। भक्तजन जो भी रूखी-सूखी ले आते, वही भोजन! भक्तोंके अनुरोधपर बाबा कुछ दिन बाद गाँवमें खारबोंजीके मन्दिरमें आ गये। वहीं नियमानुसार समाधिस्थ रहने लगे। सं० १९६७ वि० के अन्तमें ठाकुर शिवलाल बाबाजीको अपने गढ़में ले आये।

बाबाजीके भक्तोंमें जानकीबाई (जगलेकी माँ) भी बहुधा बाबाजीके दर्शन करने आती थी। इस देवीकी बाबाजीके प्रति विशेष श्रद्धा थी। बाबाजीसे विनयपूर्वक प्रार्थना कर वह उन्हें अपने घर ले आयी। करीब पन्द्रह वर्ष बाबाजी इस देवीके घर रहे। ध्यान-समाधिमें हीं अधिक समय बिताते रहे। यहाँ भी बाबाजीके पास भक्तजन जो भोजन ले आते, वे उसे स्वीकार करते।

जानकीबाईके घर रहते हुए सं० १९६९ वि० में बाबाजीने मौनव्रत धारण किया। जिह्वापर अयाचित वृत्तिसे विजय पा चुके थे। वाणीपर भी संयम करना चाहते थे। मेले-के अवसरपर ही मौन भंग करते, शेष दिन मौन ही रहते।

सं० १९८४ वि० श्रावण मासकी शुक्ला तीजके दिन जानकीबाई (जगलेकी माँ) का स्वर्गवास हो गया। समारोहके साथ उनकी अन्तिम-क्रिया की गयी। जानकीदेवीके बारहवें दिनके क्रियाकर्मके एक मास बाद बाबाजी श्मशान-भूमिमें जालानों छतरीमें चले गये। करीब दो वर्ष यहां रहे। यहां भी भक्तोंका आना-जाना बना हुआ था। सं० १९८५ वि० श्रावण शुक्ला तीजके दिन जानकीबाईकी पुण्यतिथिके अवसरपर मेलेका आयोजन किया गया। इस अवसरपर बाबाजीने मौन भंगकर समागत भक्तजनोंको उपदेश दिया।

भक्त देवी बनासा : श्मशान-भूमिमें जालानों छतरीपर बाबाजीके दार्शनार्थियोंमें भक्त देवी बनासा भी आने लगी। यह देवी समृद्ध लाट-परिवारकी थी। बनासा देवीके घरवालोंको उसका श्मशान-भूमिमें बाबाके पास जाना पसन्द न था। बाबाने भी उसे समझाया

कि वह श्मशान भूमिमें उनके पास न आया करे। यदि आना ही हो तो अधिक समय वहाँ न बैठा करे।

देवी बनासाके हृदयमें भक्तिभावका अंकुर फूट चुका था। बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। यद्यपि कुछ लोगोंमें देवी बनासाका वहाँ जाना लोकापवादका भी विषय बना, पर जहाँ अन्तःकरणमें पवित्रता है, वहाँ अपवादका भय नहीं रहता।

इसी तरह समय बीतता गया। सं० १९८७ वि० पौष मासमें बनासाके पतिदेव श्री नर्वदाप्रसादजी कलकत्तासे आये। अपनी पुत्री पन्नाबाईके विवाहके उपलक्ष्यमें बनासा देवीको कलकत्ता चलनेके लिए आग्रह किया। एकबार तो बनासा देवीने कलकत्ता चलना स्वीकार नहीं किया, पर बादमें बाबाजीके समझाने पर चली गयी।

कुछ दिन कलकत्ता-निवासके बाद रिसिया (बिहार) में बनासा देवीके रहनेका प्रबन्ध किया गया। बनासा देवीके अनुरोधपर बाबाजी भी रिसिया आ गये।

सं० १९९१ वि० में तीजके मेलेके अवसरपर बनासा देवी और बाबा मण्डेला आये। मेला समाप्त होनेपर कुछ समय वैद्यनाथधाम और कुछ समय कलकत्ता रहे। बाबाके सत्संगमें बनासा देवीकी वैराग्य-भावनामें निरन्तर बढ़ावा मिला।

सं० १९९४ वि० में बाबा और बनासा देवी जसीडीह आ गये। नर्वदाप्रसादने सं० १९९७ वि० में यहीं इनके रहनेके लिए कोठी बनवा दी। सात वर्ष इस कोठीमें दोनों रहे। भक्तजन यहीं आकर बाबाके दर्शन करने लगे।

यहीं पन्नाबाई भी माँ की सेवामें रहती हुई बाबाका सत्संग करने लगी। पन्नाबाईके अन्तःकरणमें भी बोधका प्रकाश और शान्तिका आभास होने लगा।

रसियामें रहते हुए बाबा ध्यानमग्न अधिक रहते थे। सं० २००४ वि० में मनमें उमंग आयी और मण्डेला वापस आ गये। माता बनासा देवी साथ थी।

विदाई : मण्डेला आनेपर बाबाका शरीर अस्वस्थ रहने लगा। मन शान्त था। सं० २००४ वि० आषाढ़ शुक्ला द्वादशी रविवार सुबह बाबाके निवासपर दर्शनार्थियोंका तांता लगने लगा। बाबा ध्यानावस्थित जानेकी तैयारीमें थे। प्रभुका बुलावा आ गया था।

माता बनासा देवीने बाबासे कहा : 'तू तैने जाणे है' ना ? तू कुण है ?'

बाबाने सिर हिलाकर इशारा किया : 'मैं आत्मबोधकी अवस्थामें हूँ' अन्तमें 'ॐ' का उच्चारण कर ब्रह्मलीन हो गये।

हजारों भक्त बाबाजीके अन्तिम दर्शनोंको आये। सब भक्तोंने मिलकर बाबाजीकी वैकुण्ठी निकाली। भक्तिमय गानके साथ बगीचेमें ले जाकर अन्तिम-संस्कार किया। माता बनासा देवीने अपने हाथों अग्निदाह किया। भक्तोंके मनमें गुरुके वियोगका दुःख तो था, पर गुरुके उपदेशोंसे मनमें शान्तिका आभास भी था।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष द्वादशीसे आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वादशीतक मण्डेलेमें बाबाकी निर्वाणकी स्मृतिमें प्रतिवर्ष मेला लगता है। भजन, कीर्तन-उपदेश तथा सत्संगका प्रबन्ध होता है। बहु-संख्यामें भक्तजन इसमें उपस्थित होते हैं।

श्रीकृष्ण-भावना ही सर्वोत्तम योग

डा० रवीन्द्रप्रताप राव, एम० एस-सी०
प्रवाचक । गोरखपुर विश्वविद्यालय

★

भगवद्गीतामें संस्कृतके 'माम्' शब्दका व्यापक प्रयोग देखा जाता है। इसका अर्थ है 'मुझको'। परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं : 'मुझमें' (Unto Me)। इसका हम अन्यथा अर्थ नहीं लगा सकते। उदाहरणके लिए जब मैं कहता हूँ कि 'मुझे एक गिलास पानी लाओ' तो उसका अर्थ होता है : 'मैं वह व्यक्ति हूँ जिसे पानी चाहिए।' यदि आप मुझे जल लाकर देते हैं, किसी औरको नहीं तब तो यह ठीक बात है। इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण कहते हैं : 'मुझको' तो इसका मतलब हुआ श्रीकृष्णको। किन्तु दार्शनिक आज-तक इसका यह अर्थ लगाते आ रहे हैं कि 'श्रीकृष्णको नहीं, किसी दूसरेको।' व्याकरणकी दृष्टिसे यह सर्वथा भ्रामक और अशुद्ध है।

श्रीकृष्णसे जिसकी लगन लग जाय, वह 'श्रीकृष्णभावनाश्रित' (Krishna Concious) व्यक्ति है। यदि आपको अपनी प्रेमिकासे लगाव है तो आप निरन्तर उसकी चिन्तामें लगे रहते हैं। यह प्रेमीकी भावना है और सर्वथा स्वाभाविक है। साथ ही यह भी कहा जाता है कि एक ऐसी स्त्री, जिसका पतिके अतिरिक्त दूसरा प्रेमी होता है, जागरूकता और सावधानीसे गृहकार्यमें लगी रहती है; पर सदैव सोचा करती है कि कब रात्रिमें वह अपने प्रेमीसे मिलेगी ? यह एक उदाहरण है। गलत होते हुए भी स्वाभाविक है कि यदि हम किसीसे प्यार करते हैं तो सदैव उसकी सोचा करते हैं। यदि भौतिक दृष्टिसे यह सम्भव है तो आध्यात्मिक दृष्टिसे भी सम्भव होना चाहिए। भगवद्गीताकी यही सम्पूर्ण शिक्षा है।

इस बातको स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिए कि जिस समाजमें आध्यात्मिक या श्रीकृष्णभावाश्रित (Krishna Conscious) व्यक्ति नहीं है, वह समाज दुष्टोंका समाज है; क्योंकि वह बिना सिर का है। जहाँ भी सिर-विहीन शरीर होगा, वह निश्चय ही मृत-शरीर होगा। दिमाग न होनेपर आदमीको पागल कहा जायगा और सिर न होने पर मृत।

गीतामें श्रीकृष्णने कहा है कि प्रिय अर्जुन, विभिन्न प्रकार एवं विभिन्न आकारोंके जीवोंका मैं ही जनक हूँ :

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥ (गीता १०.८)

'मैं ही सम्पूर्ण भौतिक एवं पारलौकिक जगत्की उत्पत्तिका कारण हूँ। सभी वस्तुओंका जनक मैं ही हूँ। बुद्धिमान् भक्तजन जो इस तथ्यको जानते हैं, वे मेरी भक्तिपूर्वक सेवा और हृदयसे निरन्तर पूजा करते हैं।'

इसीसे पता चलता है कि श्रीकृष्ण कितने व्यापक (Universal) हैं। वे केवल मानव-समाजको ही नहीं, परन्तु पशुवर्ग, खग-समाज एवं जन्तुओंके समाजको भी अपना

समझते हैं। जब वे कहते हैं कि 'मैं सबका जनक हूँ' तो श्रीकृष्णके लिए कोई विदेशी कैसे रहे? यह सोचना कि श्रीकृष्ण भारतीय या हिन्दुओं द्वारा पूजित हैं, अतएव वे एक हिन्दू-देवता हुए, सर्वथा भ्रामक है। यदि श्रीकृष्णने यह कहा होता कि वे हिन्दू-देवता या भारतीय हैं, तो कोई बात भी होती। वे सूर्यकी तरह हैं। सूर्यको 'अमेरिकी सूर्य' या 'भारतीय सूर्य' कहना मूर्खता है। वास्तवमें सूर्य ही नहीं कोई भी व्यक्ति भारतीय, रूसी या अमेरिकी नहीं है; ये बनावटी बातें हैं। यह सम्पूर्ण पृथ्वीलोक मानवमात्रका है, यही एकमात्र वास्तविकता है।

असली साम्यवाद भी यही है। आजकलकी साम्यवादी विचारधारा सर्वथा त्रुटिपूर्ण है। रूसी कहते हैं कि रूस रूसियोंके लिए हैं और चीन-चीनियोंके लिए हैं। परन्तु वह दूसरोंके लिए क्यों नहीं? हमें मानव-साम्यवादकी ही न सोचकर जीव-साम्यवाद (Living Being Communism) की भी सोचनी चाहिए। पृथ्वी तो सभीके लिए हैं अथवा सबकी है। ये पेड़-पौधे, पशु आदि सबके हैं। उनको भी जीवित रहनेका अधिकार है। तब हम लोगोंको जानवरोंको वधालयमें ले जानेका क्या अधिकार है? यह सर्वथा अन्याय है। स्वयं अन्याय करके आप अपने लिए न्याय कहाँसे पा सकते हैं। इससे पता चलता है कि लोगोंमें 'श्रीकृष्ण-भावना' नहीं है।

हम सांसारिकजन यह नहीं जानते कि भगवान् श्रीकृष्ण हमारे आरम्भिक पिता हैं और हम सभी उनके पुत्र हैं। इस प्रकार पेड़, कीड़े-मकोड़े आदि सभी हमारे भाईके समान हुए और अमेरिकी, भारतीय, रूसी, चीनी आदि सभी भाई-भाई हुए। बिना श्रीकृष्ण-भावनाकी प्राप्तिके यह कभी सम्भव नहीं। हम विश्वबन्धुत्व और राष्ट्रसङ्घ (United Nations) की बहुत बातें करते हैं, परन्तु वे सब व्यर्थकी बातें हैं। जबतक हम एक पिताको नहीं मानेंगे तबतक बन्धुत्व या मानवताकी भावना हममें कैसे आ सकती है? संयुक्त राष्ट्रसंघ-जिसका मुख्यालय न्यूयार्कमें है, वर्षोंसे शान्ति एवं विश्वबन्धुत्वके लिए कार्य कर रहा है। परन्तु कोई भी समझ सकता है कि उससे क्या लाभ हुआ है? जबतक श्रीकृष्ण-भावनाका प्रचार नहीं होता, इस दशामें विशेष सुधार होना असम्भव है।

श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि हमें सबके प्रति लगाव होना चाहिए। आप इसे शुरू करें, यह कोई बनावटी बात नहीं है। आज अमेरिकी तथा यूरोपीय भक्त श्रीकृष्ण-भावना अपनाकर प्रगति कर रहे हैं। यदि उन्हें इस कार्यमें आनन्द नहीं आता, तो वे "हरे कृष्ण" मन्त्रके जप एवं कीर्तनमें अपना समय क्यों नष्ट करते? वे ऐसा इसलिए कर रहे हैं कि यह सहज है। यदि आप प्रयत्न करें तो अपनेमें किसी भी व्यक्ति या पदार्थके लिए प्रेम पैदा कर सकते हैं। श्रीकृष्ण-भावनाकी प्रगति तो सर्वथा स्वाभाविक है। श्रीकृष्ण किसी जाति या धर्मविशेषके अन्तर्गत नहीं आते। वे स्वयं कहते हैं कि 'हम सबके हैं।' अतएव हम सभी लोग श्रीकृष्णसे सीधे सम्बन्धित हैं, परन्तु इन बातोंको भूल गये हैं। कीर्तन करनेसे हम श्रीकृष्णकी यादगारको ताजा कर सकते हैं।

श्रीकृष्ण अपने नामसे और अपने द्वारा कहे शब्दोंसे अलग नहीं हैं, क्योंकि वे परम (Absolute) सत्य हैं। 'नाम कृष्ण' और 'व्यक्ति कृष्ण' एक ही हैं; क्योंकि श्रीकृष्ण ही सब

कुछ हैं। कहा भी है : अभिन्नत्वात् नाम-नामिनः। सभी वस्तुएँ भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तियोंका परिणाम हैं। सर्वं खल्विदं ब्रह्म का तात्पर्य यही है कि सभी वस्तुएँ ब्रह्मकी शक्तिका परिणाम हैं।

गीताके नवें अध्यायमें इसे अच्छी तरह समझाया गया है। 'मैं सर्वत्र व्याप्त हूं। परन्तु वह मेरा अव्यक्त (Impersonal) रूप है।' अपने अव्यक्त रूपमें श्रीकृष्ण सर्वत्र हैं, फिर भी वे एक व्यक्ति हैं :

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥ (गीता. ९.४)

मैं सम्पूर्ण जगत्में अव्यक्त रूपमें व्याप्त हूं। सभी भूत मेरे अन्दर स्थित हैं, पर मैं उनमें स्थित नहीं, अर्थात् मेरा पृथक् व्यक्तित्व है।

भौतिक स्तर पर हम देखते हैं कि यदि हम कागजका एक टुकड़ा ले लें और फाड़कर बहुत सारे छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर उन्हें बिखेर दें, तो आरम्भिक कागजका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। यह भौतिक वस्तुओंकी बात है। परन्तु वेदोंसे प्राप्त ज्ञान यह बताता है कि परम सत्य इस प्रकार सम्पूर्ण है कि यदि उसमेंसे सम्पूर्ण निकाल लिया जाय, तो सम्पूर्ण ही बचता है। अर्थात् एकमेंसे एक निकाल लेनेपर भी एक बच रहता है। भौतिक स्तरपर सोचनेपर एकमेंसे एक निकाल लेनेपर शून्य बच रहता है, परन्तु आध्यात्मिक स्तरपर ऐसा नहीं होता। आध्यात्मिक स्तरपर एकमेंसे एक निकाल देनेपर भी एक बचता है और एकमें एक जोड़नेपर भी एक ही होता है।

आप लोगोंको यह जानकारी हासिल करनी पड़ेगी कि किस प्रकार सभी वस्तुओंमें सर्वत्र श्रीकृष्णसे सम्बन्ध स्थापित किया जाय। योग प्रणालीमें इसका विवरण दिया गया है। 'श्रीकृष्णभावना' भी योग है और सम्पूर्ण योग है तथा सभी यौगिक प्रणालियोंमें उच्चतम है। यही नहीं उच्चतम योग प्रणाली होते हुए भी यह अत्यन्त सहज है। थोड़ी-सी शक्तिका आभास पानेके लिए आपको सप्ताहों व महीनों भर व्यायाम नहीं करना पड़ेगा। 'श्रीकृष्ण-भावना' में कोई थकता नहीं। भौतिक जगत्में थोड़ा-सा काम करनेके बाद कोई भी थक जाता है।

अस्सी वर्षके वयोवृद्ध व्यक्ति होनेपर भी विश्व में 'हरे कृष्ण आन्दोलन' के प्रवर्त्तक परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद दिन-रात काममें लगे रहते हैं। वे चाहे तो सब कार्योंसे सदैव विश्राम ले सकते हैं परन्तु उनकी इच्छा बनी रहती है कि किस प्रकार वे अधिकसे अधिक श्रीकृष्णकी सेवामें लगे रहें।

यही श्रीकृष्णभावना है। 'श्रीकृष्णभावना समाज' कोई अकर्मण्योंका समाज नहीं है। इसमें सभी लोग सदैव अधिकसे अधिक कार्य करनेको आतुर रहते हैं। बहुत सारी पुस्तकें भी छपी हैं और छपती जा रही हैं।

वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्णका भक्त तो अपने कार्यमें सर्वविधा निपुण होता है।

●

परा-पूजा

१.

परागित प्रसूनित प्रमितपुँज पावन, विविध रूप मेरे बने हैं बसेरे।
सभी स्नात उज्ज्वल मुखर वन्दनामें, उड़े ज्ञान-गौरव सबेरे सबेरे॥

२.

मुकुलसम मृदुल नीड़में रख हृदय निज, खुले पंख उड़ते सतत व्योममें हैं।
निरन्तर धरा पर झुका दृष्टि स्नेहिल अनेकों लिये इष्ट श्रीसोममें हैं॥

३.

पुलक प्राण-सौरभ-सुरभि स्नात सुन्दर, सुकोमल सरस स्निग्ध सिय ओम्में हैं।
अनेकों हृदयकी लिये अंजलीको, बसाये परमभक्ति हर रोममें हैं॥

४.

उन्हींकी कृपासे चले जा रहे हम, भरे लोचनोंमें अरंगित पगोंको।
धरे शीशपर सत्य श्रद्धा सलोनी, जननि नूपरोंके मनोहर नगोंको॥

५.

करों में जला दीप प्रभु-आरतीके, अलौकिक सुमन मुक्तिमय भारतीके।
हृदयमें लिये भक्ति श्रीश्यामवर्णा, सजाये अधरपर मधुर रामचरणा॥

६.

समर्पित सुमन कर रहे हैं निरन्तर, अजिर में अलौकिक अमितमौन अन्तर।
विरल विश्व-वन्दित परम राम राघव, परा-पूज्य प्रतिपल मधुर श्याम-माधव॥

—श्री शिवकुमारजी

भगवद्भजनसे आनन्दकी प्राप्ति

श्री शारदाप्रसाद पाण्डेय एम० ए०

★

भोगमें लिप्त जीव इधर-उधर भटकता रहता है, किन्तु कहीं भी उसे शान्ति नहीं मिलती। यद्यपि वह झूठे तानेबाने अथवा अहम्भावको धारणकर क्षणिक आनन्दमें डूब जाता है; किन्तु शीघ्र उसे अनुभव होता है कि जिसे वह आनन्द स्वरूपा समझकर आलिङ्गन लिया था वह तो दुःखसरिता है जिसमें उसका सर्वनाश निहित है। अतः वह आनन्द प्राप्तिके अन्य मार्गकी खोजमें निकल पड़ता है। इस प्रकार एक-एक करके क्षणिक आनन्दके अनेकानेक कटुताओंका अनुभव करता हुआ इधर-उधर ठोकरें खाता रहता है। किन्तु शान्ति उसे कहीं नहीं मिलती। आखिर मनुष्य इस प्रकार क्यों इधर-उधर भटकता रहता है? क्या उसे शान्ति एवं सुख नहीं मिल सकती? और यदि यह सुलभ हो सकती है तो कैसे?

वास्तवमें शान्ति एवं सुखका सुलभ होना कोई कठिन नहीं। किन्तु सत्य यह है कि मानव-मास्तिष्कपर जबतक भ्रमका साम्राज्य है तबतक कोई भी प्रयास सार्थक न होगा। भ्रम रूपी चादरसे ढका मस्तिष्क वास्तविक और अवास्तविकमें अन्तर करनेमें असमर्थ होता है। इस भ्रमकी कोई सीमा नहीं है। यद्यपि यह दैववाणी है :—

एको देवः सर्वभूतेषू गूढ़ः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।

फिर भी आज अनेकानेक सम्प्रदाय पैदा होकर मार्गको कुमार्ग कर दिए हैं। कोई हिन्दुत्वकी बलिहारी गाता है तो कोई इस्लामको स्वीकार करता है, कोई ईसाई कहता है तो कोई सिख, जैन आदि। जिस संसारमें एक ही भगवान्‌के प्रति इतनी विविधता है उसका कल्याण कैसे हो सकता है? आज भगवान् भी इस बातसे दुःखी होगा कि उसने मनुष्यको मस्तिष्क देकर गलती ही की। अन्यथा यह विविधता न होती। गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही लिखा है :—

दम्भित निज मत कलपि कर किए वह पंथ।

ईश्वर एक है। वह अनादि एवं अनन्त है। उसीके मायासे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड चलायमान है। वह भिन्न-भिन्न अवसरोंपर अपने किसी एक अंशको लेकर प्रकट होता है, जो कि इतना दिव्य होता है कि हम उसी अंशपर मुग्ध हो जाते हैं तथा भावविभोर होकर श्रद्धाके

फूल चढ़ाते हैं। किन्तु जिस मानस पटलपर इसके प्रति कोई अनुराग नहीं पैदा होता, उसका हृदय निःसन्देह उस गन्दे चादरके समान है जिसपर कोई भी रंग, चमक पैदा नहीं कर सकता। ऐसे प्राणीको चाहिए कि वह अपने मनको शुद्ध करके यथार्थ जगत्को देखे। जिस प्रकार शरीरको स्वच्छ करनेके लिए हम साबुनका प्रयोग करते हैं, सौन्दर्यताको निखारनेके लिए तेल, पाउडर आदिका प्रयोग करते हैं वैसे ही मनको शुद्ध करने एवं उसमें सुन्दरता बढ़ानेके लिए हमारे ऋषियोंने बड़ा उपयोगी एवं सरल मार्ग दर्शाया है। ये मार्ग हैं :

१. एक भगवान्‌का नाम जपो।

२. भगवान्‌के रूपका ध्यान करो।

३. भगवान्‌की लीलायें सुनो। आदि,

इससे मुख्य लाभ यह होता है कि अज्ञान मिट जाता है, अज्ञानके मिटनेसे ज्ञान होता है और ज्ञान होनेसे आनन्दकी प्राप्ति होती है। चूँकि मनुष्यके लिए ज्ञान एक महान् आदर्श है और आनन्दकी प्राप्ति महान् लक्ष्य। अतः साधनको भी महान् होना आवश्यक है। अब प्रश्न उठता है कि महान् साधनको जुटावें कैसे? किन्तु इसके लिए न तो कहीं जानेकी आवश्यकता है और न ही किसी प्रकारका कष्ट उठानेकी आवश्यकता। यह साधन है 'भगवद्-भक्ति।' इसमें न तो पीड़ा है और न ही कोई व्याधि; बल्कि भगवद्-भक्तिमें जितना ही मन डूबता जायेगा उतनी ही प्यास (प्रभुदर्शनकी) बढ़ती ही जायेगी और मनमें और !! और !! की जिज्ञासा बढ़ती ही जायेगी। व्यक्ति सदैव ही अपनेको आनन्दके सागरमें पायेगा। गोस्वामीजीने उचित ही लिखा है—

राम भजन बिनु सुनहु खगेसा।
मिटहि न जीवन केर कलेसा॥

इस प्रकार मनुष्यको सुख-शान्ति आदि तभी प्राप्त हो सकता है जब वह निर्मल मनसे हरि पूजनमें लीन हो जाय अन्यथा मानवता कलंकित होनेसे बच न सकेगी और न तो कोई चैनका जीवन-यापन कर सकेगा। श्रीमद्भागवद्गीतामें लिखा है :

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत।
तत्प्रसादात्पराशान्ति स्थानं प्राप्यसि शास्वतम्॥

अतः यदि हम सुख एवं शांति चाहते हैं तो हमें उस गिरधारीकी शरणमें पहुँचना चाहिए अन्यथा इसके अभावमें आनन्द कहाँ?

●

होगा समाप्त जब यह जीवन !

मञ्जुश्री वात्स्यायन बी० एस-सी०

जीवन के दुर्लभ कई वर्ष यों बीत गये ज्यों बीत गये।
साधन भी थे, साधना-हीन मन किन्तु नहीं कुछ कर पाया॥
सपनोंने ही बस भरमाया !

जब मन चेता विधि बाम हुए सारे प्रयास निष्काम हुए।
साधन दुर्लभ, साधना-हीन मन ने अतीत को दुहराया॥
हारा मन बेबस अकुलाया !

आगत अतीत सब कर विस्मृत होंगे पर लिये क्षोभ स्थित।
चुभता है प्रश्न एक मनमें, कुछ कर न सकी इस जीवनमें॥
हम वर्तमान जीभर जीयें खुशियोंके आज आसव पीयें।
तब किन्तु नहीं होगा क्या गम, होगा समाप्त जब यह जीवन॥

(पृष्ठ ८ का शेषांश)

यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। अर्जुन ! मैं ही मैं ही सबकी गति यानी प्राप्त करने योग्य, सबका भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभाशुभ कर्मोंका द्रष्टा, सबका निवास या आश्रय स्थान, सबको शरण देनेवाला, शरणागत आर्त्तोंकी आर्ति-मिटानेवाला, प्रत्युपकारकी अपेक्षा न रखते हुए उपकारी मित्र, जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयकी स्थान, प्राणियोंका कालान्तरोंपभोग्य खजाना, सबका अविनाशी बीज हूँ।

अर्जुन ! मैं ही सूर्य बनकर तपता हूँ, अपनी किरणोंसे कभी वर्षाका आकर्षण करता हूँ तो कभी बरसाता हूँ। मैं देवोंके लिए अमृत और मानवोंके लिए मृत्यु हूँ। सत् और असत् भी मैं ही हूँ। जो त्रैविद्य यानी ऋक्, यजु, साम इन तीन वेदोंके कर्म करनेवाले, सोमपान करनेवाले सोमयानी तथा निष्पाप पुरुष यज्ञ द्वारा मेरी पूजा-उपासना कर स्वर्गलोककी कामना करते हैं, वे अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप इन्द्रलोक प्राप्तकर स्वर्गमें दिव्य भोग भोगा करते हैं। उस विशाल स्वर्गको उपभोगसे पुण्यका क्षय हो जानेपर वे फिर जन्म लेकर मृत्युलोकमें आते हैं। इस प्रकार त्रयी धर्म यानी तीनों वेदोंके यज्ञ-याग और श्रौतकर्मका आचरण करनेवाले और काम्य फलोंके उपभोगके इच्छुक लोगोंको स्वर्गका आवागमन प्राप्त होता है। अर्थात् पुण्यके प्रभावसे स्वर्ग जाते हैं और भोगसे वह समाप्त होनेपर पुनः मृत्युलोकमें आ जाते हैं।

FOR QUALITY AND DURABILITY

In

HESSIAN, SACKING

And

CARPET BACKINGS

Always Rely on :

KAMARHATTY PRODUCTS

●

Manufacturers :

KAMARHATTY COMPANY LIMITED

16-A, Brabourne Road, Calcutta-1

Phone : 22-2507 (2 Lines)

Mills : KAMARHATTY
24-Parganas
West Bengal.

Phone : 611-280
611-274

For best Quality pure-white crystal sugar
Always Rely on the product of

The Pratappur Sugar Mills Limited

Mills At :
P. O. Pratappur
Dist. Deoria (**U. P.**)
Phone : Siwan 48
Gram : 'Sucrose' Mairwa.

Registered Office :
9, Brabourne Road,
(6th Floor)
CALCUTTA-1
Phone : 22-0181 (4 lines)
Gram : Bestsugar, Calcutta.
Telex : Cal-611

★

We also manufacture Raw Sugar
for Export.

नीति-वचनामृत

(महा० सभापर्व ७२.)

यतो बुद्धिस्ततः शान्तिः प्रशमं गच्छ भारत ।
नादारुणि पतेच्छस्त्रं दारुण्येतन्निपात्यते ।। ५ ।।

काट कुल्हाड़ी काठको रक्षित रहती आप ।
जौं पाहन लोहा गिरे मुरे पाय परिताप ।।
शान्ति सुपथ तवतक चलो जबतक तनमें एक ।
यही शक्ति सबसे बड़ी जब लौं बुद्धि-विवेक ।।

न वैराण्यभिजानन्ति गुणान् पश्यन्ति नागुणान् ।
विरोधं नाधिगच्छन्ति ये त उत्तमपूरुषाः ।। ६ ।।
स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि ।
सन्तः परार्थं कुर्वाणा नावेक्षन्ते प्रतिक्रियाम् ।। ७ ।।

स्मृति बैरकी रखते नहीं गुण देखते अवगुण नहीं ।
वे भद्र मनुज विरोधकी जिनके न मनमें धुन रही ।।
शुभ कर्म करते सन्तजन कृत वेर भी कब मानते ।
वे अन्य जन हित जान दे प्रतिफल कभी क्या चाहते ।।

'बाबाजी'

सूक्ति-सुधा

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ।।

वह सभा है ही नहीं शोभा न वृद्धोंकी जहाँ ।
धर्म वाणीमें नहीं फिर वृद्ध ही हैं वे कहाँ ।।
धर्म वह है नित्य जिसमें सत्य करता वास हो ।
सत्य भी वह है नहीं छल-छद्म जिसके पास हो ।।

'बाबाजी'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, दुण्ढिराज, वाराणसी—२२१००१ में मुद्रित एवं प्रकाशित